जून 2019

आई.एस.ओ. 9001: 2008 संगठन

मूल्य: ₹30

भाकृअनुप
ICAR

खेती

जलवायु परिवर्तन विशेषांक

• इस अंक में •

जलवायु परिवर्तन के दौर में अच्छी उपज लेने के गुर

दलहनी पफसलों की पर्यावरण रक्षा एवं मृदा सुधार में भूमिका

जलवायु परिवर्तन से मछलियों पर मंडरा रहा खतरा

www.icar.org.in

जलवायु परिवर्तन से कृषि को बचाने के उपाय

"अधिक कृषि उत्पादन प्राप्त करने के लिए तरह-तरह के रासायनिक उर्वरकों और जहरीले कीटनाशकों का प्रयोग किया जाता है। ये प्रकृति के जैविक और अजैविक तत्वों के बीच के आदान-प्रदान के चक्र (इकॉलाजी सिस्टम) को प्रभावित करते हैं। इससे भूमि की उर्वराशक्ति प्रभावित हो जाती है। इसके साथ ही वातावरण प्रदूषित होता है। यही जलवायु परिवर्तन का प्रमुख कारण बन रहा है। ऐसे में भारत समेत दुनिया के कई देशों में जलवायु परिवर्तन के खतरे को कम करने के लिए पर्यावरण अनुकूल खेती को बढ़ावा देने के उद्देश्य से कई प्रकार की विधियों को अपनाया जा रहा है।"

वर्तमान में मानवजनित और भौगोलिक कारणों से जलवायु अनिश्चितता की स्थिति बन गई है। यह अनिश्चितता आने वाले कई वर्षों तक देखने को मिल सकती है। गर्मियां बढ़ती जा रही हैं और सर्दियों का मौसम सिकुड़ता जा रहा है। अलनीनो संकट बना ही रहता है। बरसात समय से पहले दस्तक दे रही है और मानसून के समय सूखे की स्थिति उत्पन्न होती जा रही है। दुनिया भर में बढ़ते औद्योगिकीकरण एवं वाहनों की संख्या में बढ़ोतरी से ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में इजाफा हो रहा है। इनके उत्सर्जन से वैश्विक तापमान में वृद्धि एवं जलवायु परिवर्तन जैसी घटनाओं ने समस्त विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है।

जैविक खेती

खेतों में रासायनिक खादों व कीटनाशकों के इस्तेमाल से जहां एक ओर मृदा की उत्पादकता घट रही है, वहीं दूसरी ओर इनके अंश भोजन श्रृंखला के माध्यम से मानव के शरीर में पहुंच रहे हैं। इससे अनेक प्रकार के रोग पैदा होते हैं। रासायनिक खेती से हरित गैसों के उत्सर्जन में काफी वृद्धि भी हो रही है। इस कारण पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है। ऐसे में इस संकट से निपटने के लिए जैविक खेती का मॉडल दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में अपनाया जा रहा है। यह पर्यावरण अनुकूल होने के साथ ही वैश्विक तपन को कम करने में भी अहम् भूमिका निभा रहा है।

जैविक खेती में रासायनिक खाद पर निर्भरता कम होने से खेती की लागत में कमी आती है और फसलों की उत्पादकता में वृद्धि होती है। इसके साथ जैविक खाद के उपयोग करने से भूमि की गुणवत्ता में सुधार आता है। भूमि की जलधारण क्षमता बढ़ती है और भूमि से पानी का वाष्पीकरण कम होता है।

जैविक खेती, रासायनिक खेती की तुलना में बराबर या अधिक उत्पादन देती है। दूसरे शब्दों में जैविक खेती मृदा की उर्वरता एवं कृषकों की उत्पादकता बढ़ाने में पूर्णत: सहायक है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में जैविक खेती की विधि और अधिक लाभदायक है। इस विधि द्वारा खेती करने से उत्पादन की लागत में कमी के साथ ही किसानों को आय अधिक प्राप्त होती है। इतना ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा में जैविक उत्पाद अधिक खरे उतरते हैं।

जलवायु स्मार्ट कृषि

जलवायु परिवर्तन से कृषि क्षेत्र को बचाने के लिए जलवायु स्मार्ट कृषि की प्रणाली को विकसित किया गया है। भारत में भी इसकी ठोस पहल की गई है और इसके लिये राष्ट्रीय स्तर की परियोजना भी लागू की गई है। यह एक एकीकृत दृष्टिकोण है, जिसमें फसली भूमि, पशुधन, वन और मत्स्य पालन के एकीकृत प्रबंधन का प्रावधान होता है। यह परियोजना खाद्य सुरक्षा और जलवायु

जैविक खेती की ओर लौटती कृषि

आवरण पृष्ठ III पर जारी

भाकृअनुप
ICAR

खेती

कृषि विज्ञान द्वारा ग्रामोत्थान
की मासिक पत्रिका

वर्ष: 72, अंक: 2, जून 2019

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. अशोक कुमार सिंह** — **अध्यक्ष**
   उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. सतेन्द्र कुमार सिंह** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक
   भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. आर.सी. गौतम** — **सदस्य**
   पूर्व डीन
   भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
4. **डा. एस.के. सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग
   नियोजन ब्यूरो, नागपुर
5. **डा. वाई.पी.एस. डबास** — **सदस्य**
   निदेशक (प्रसार)
   जी.बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
   पंतनगर
6. **श्री सेठपाल सिंह** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
7. **श्री सुरेन्द्र प्रसाद सिंह** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **श्री अशोक सिंह** — **सदस्य सचिव**
   प्रभारी, हिन्दी संपादकीय एकक

संपादक
अशोक सिंह
संपादन सहयोग
सुनीता अरोड़ा

प्रधान प्रोडक्शन अधिकारी
डा. वीरेन्द्र कुमार भारती
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
अशोक शास्त्री

लेआउट डिज़ाइन
डा. वीरेन्द्र कुमार भारती
अशोक शास्त्री

व्यवसाय सम्पर्क सूत्र
सुनील कुमार जोशी
व्यवसाय प्रबंधक
दूरभाष : 011-25843657
E-mail: bmicar@icar.org.in
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12
एक प्रति : रु. 30.00 वार्षिक : रु. 300.00

E-mail: khetidipa@gmail.com

विषय-सूची

संपादकीय — कृषि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन की बढ़ती चुनौतियां, अशोक सिंह

आवरण कथा — 3
जलवायु परिवर्तन के दौर में अच्छी उपज लेने के गुर
पंकज कुमार सिंह और शिव मंगल प्रसाद

दलहन — 8
दलहनी फसलों की पर्यावरण रक्षा एवं मृदा सुधार में भूमिका
मुकेश कुमार मीना, हरि सिंह मीना, सुरेन्द्र कुमार मीना, बिन्द्र सिंह और अंकित मलिक

जलजीव — 12
जलवायु परिवर्तन से मछलियों पर मंडराता खतरा
स्रोत: केंद्रीय समुद्री मत्स्य अनुसंधान संस्थान

विश्व पर्यावरण दिवस 5 जून पर विशेष — 14
बढ़ते वायु प्रदूषण से अन्न संकट

परिवर्तन — 16
जलवायु परिवर्तन में उपयोगी है कूंड एवं नाली विधि से बुआई
आर. के. सिंह और वीणापाणि श्रीवास्तव

विरासत — 18
जलवायु परिवर्तन के कृषि प्रभाव को कम करने में उपयोगी पारंपरिक ज्ञान
रणबीर सिंह राणा, मुनीश, रानू पठानिया, शिवानी ठाकुर और उषा राणा

स्वस्थ धरा — 22
अरहर की पत्तियों से मृदा स्वास्थ्य में सुधार
गोरधन गेना, महेशचन्द मीना और अशोक कुमार

स्वरोजगार — 25
खाद्य प्रसंस्करण प्रशिक्षण से कृषक महिलाओं का सशक्तिकरण
लक्ष्मी चक्रवर्ती, स्वप्निल दुबे और शिव कुमारी भारती

संभावना — 29
पर्वतीय क्षेत्रों में सोयाबीन है लाभ की खेती
अनुराधा भारतीय, निर्मल चन्द्रा, जे.पी. आदित्य, रमेश सिंह पाल, हेमलता जोशी और लक्ष्मीकांत

तकनीक — 34
झींगा गड्ढे से जैविक अपशिष्ट प्रबंधन
नरेश राज कीर, उदयराम गुर्जर, सुमन ताकर, राजपाल यादव और खेमराज बुनकर

आमदनी — 35
संरक्षित खेती, दोगुनी आय का स्रोत
प्रदीप कुमार सिंह

पशु स्वास्थ्य — 39
पशुओं के वर्षाकालीन संक्रामक रोगों की रोकथाम
अरविन्द कुमार त्रिपाठी

महत्व — 43
स्वास्थ्य और समृद्धि के लिए जैविक खेती
हेमलता सैनी और मोती लाल मीणा

कृषि कैलेण्डर — 47
जून के मुख्य कृषि कार्य
राजीव कुमार सिंह, विनोद कुमार सिंह, कपिला शेखावत, प्रवीण कुमार उपाध्याय और **एस.एस. राठौर**

समसामयिक
जलवायु परिवर्तन से कृषि को बचाने के उपाय — आवरण II, आवरण III

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं, उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। लेखों में संस्तुत रसायनों के डोज का प्रयोग करने से पहले विशेषज्ञों से सलाह अवश्य लें।

संपादकीय

जलवायु परिवर्तन विशेषांक

कृषि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन की बढ़ती चुनौतियां

जलवायु परिवर्तन की वजह से वैश्विक स्तर पर आ रहे बदलावों से अब इस बात की पुष्टि हो चुकी है कि कृषि क्षेत्र पर भी इसका प्रभाव काफी गंभीर रूप से पड़ेगा। यही कारण है कि भारत सहित विश्व के अधिकांश देशों में कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम से कम करने की दिशा में काफी व्यापक स्तर पर विशेषज्ञों द्वारा काम किया जा रहा है। अध्ययनों से पता चलता है कि जलवायु परिवर्तन एवं जलवायु विविधता के कारण फसल उत्पादन में कमी होगी। भारत में मानसून आधारित कृषि तथा अधिकांश फसलों की तापमान संवदेनशीलता की वजह से खाद्य उत्पादन पर काफी प्रतिकूल असर पड़ने की आशंका जताई जा रही है। भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के अध्ययनों से यह भी निष्कर्ष सामने आया है कि भविष्य में तापमान में प्रति 1 डिग्री सेल्सियस बढ़ोतरी होने से गेहूं उत्पादन में 4-5 मिलियन टन की कमी हो सकती है। यही नहीं तापमान में छोटे बदलावों से फलों, सब्जियों, चाय, कॉफी, संगधीय एवं औषधीय महत्व के पौधों, बासमती चावल आदि पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। इसके अतिरिक्त फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले कीटों की संख्या में तापमान, आर्द्रता एवं अन्य संबंधित कारकों में वृद्धि होने से उपज पर दुष्प्रभाव पड़ सकता है। ऐसा नहीं कि जलवायु परिवर्तन से सिर्फ फसलों पर ही असर पड़ेगा बल्कि डेयरी, मात्स्यिकी आदि के उत्पादन में भी कमी आने की आशंका व्यक्त की जा रही है।

जलवायु परिवर्तन के कृषि पर पड़ने वाले प्रभाव को न्यूनतम करने वाली फसल उत्पादन तकनीकों का विकास भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा अपने विशाल अनुसंधान नेटवर्क के माध्यम से देश के विभिन्न जलवायु क्षेत्रों के अनुसार किया जा रहा है। परिषद की ओर से निक्रा या 'कृषि में जलवायु समुत्थानशील नवोन्मेषण पर राष्ट्रीय पहल' नामक परियोजना भी इसी लक्ष्य को लेकर राष्ट्रव्यापी स्तर पर चलाई जा रही है। इसके अंतर्गत जलवायु परिवर्तन के प्रति सहिष्णु फसल प्रजातियों एवं पशुओं की नस्लों की पहचान/चयन का कार्य किया जा रहा है। देश के 150 से अधिक जिलों में जलवायु परिवर्तन के अनुकूल श्रेष्ठ कृषि पद्धतियों का किसानों के खेतों पर प्रदर्शन किया जा चुका है। इस क्रम में जलवायु परिवर्तन के अनुकूल कृषि तकनीकियों पर अनुसंधानरत संस्थानों के इंफास्ट्रक्चर को मजबूत बनाने पर भी ध्यान दिया जा रहा है। यही नहीं बड़ी संख्या में मानव संसाधन को ऐसी तकनीकों में प्रशिक्षित किया जा रहा है ताकि वे कृषक समुदाय के बीच प्रचार-प्रसार कर सकें।

'खेती' के इस अंक में जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों और कृषि क्षेत्र पर पड़ने वाले इसके प्रभावों के बारे में जानकारी देने का प्रयास किया गया है। कृषि क्षेत्र के विशेषज्ञों द्वारा प्रस्तुत इन लेखों में कृषक समुदाय को इस जोखिम को कम करने की तकनीकों के बारे में जागरूक करने की भी कोशिश की गई है। भाकृअनुप द्वारा विकसित ऐसी तकनीकों के बारे में भी इस क्रम में बताया गया है। इनमें से अधिकांश तकनीकें अत्यंत सरल एवं लागत प्रभावी हैं। इनका बड़ी आसानी से खेतों में इस्तेमाल कर जलवायु परिवर्तन से होने वाली फसलों की हानि को न्यूनतम किया जा सकता है।

सुधी पाठकों को यह पहल पंसद आएगी, ऐसी उम्मीद है।

(अशोक सिंह)

जलवायु परिवर्तन के दौर में अच्छी उपज लेने के गुर

पंकज कुमार सिंह और **शिव मंगल प्रसाद**
भाकृअनुप-केन्द्रीय वर्षाश्रित उपराऊं भूमि चावल अनुसंधान संस्थान, हजारीबाग (झारखण्ड)

"हरित क्रांति के बाद सघन खेती के साधनों जैसे-उन्नत बीज, उचित खाद की मात्रा, समय पर पौध संरक्षण एवं सिंचाई तथा कृषि की अन्य उन्नत विधियों को अपनाकर फसलों की उपज ली जा रही है। देश की तेजी से बढ़ती जनसंख्या एवं खेती योग्य जमीनों के धीरे-धीरे अन्य उपयोग में लाने से कृषि वैज्ञानिकों के लिए उपज बढ़ाना चुनौती बन गया है। यदि उन्नत विधियां अपनाकर खेती नहीं की गई तो यह भविष्य में एक समस्या का रूप ले सकती है।"

कृषि संबंधित निम्नलिखित मुख्य बिन्दुओं पर ध्यान दिये जाएं तो निश्चित ही अच्छी उपज ली जा सकती है:

बीज चयन

उत्तम बीज, कृषि का आधार होता है और उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान देता है। वैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि कुल उपज का 20-25 प्रतिशत अधिक उत्पादन केवल अच्छे बीजों के उपयोग से बढ़ाया जा सकता है। यदि हमारे पास कृषि के सभी साधन यथा-अच्छी भूमि, पर्याप्त जल, खाद, कीटनाशी इत्यादि हों, पर अच्छे बीज न हों तो संतोषजनक उत्पादन नहीं प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए बीजों का चुनाव करते समय कृषक बंधु निम्नलिखित बातों पर ध्यान दें:

उन्नत प्रजाति के बीज

जब भी किसान बीज का चुनाव करें तो अच्छी प्रजाति के बीज लें। ये अच्छे एवं अधिक उत्पादन देकर लाभ में बढ़ोतरी करते हैं।

प्रमाणित बीज

प्रमाणित बीजों की आनुवांशिक शुद्धता, भौतिक शुद्धता, अंकुरण क्षमता तथा बढ़वार उचित एवं अच्छी होती है। प्रमाणित बीज के थैलों पर इन समस्त पहलुओं का उल्लेख रहता है, जिससे आप पूरी तरह आश्वस्त होकर इन बीजों को अपने खेतों में लगा सकते हैं।

स्वस्थ बीज

प्रतिकूल मौसम एवं भंडारण के कारण बीजों के स्वास्थ्य पर असर पड़ता है। यदि आप अपने घर के बीज लगा रहे हों या किसी उत्पादक से बीज लेकर लगा रहे हों तो ध्यान रखिये कि बीज स्वस्थ हों। स्वस्थ बीजों से स्वस्थ पौधे होंगे और उत्पादन अच्छा होगा।

अच्छी अंकुरण क्षमता

प्रमाणित बीज के थैलों पर अंकुरण क्षमता अंकित रहती है, फिर भी अंकुरण क्षमता की जांच बीज बोने से पहले कर लें। घर के बीज लगा रहे हों तो यह नितान्त आवश्यक हो जाता है। इसके लिए तीन-चार जगह 100 की संख्या में बीज लेकर उन्हें अलग-अलग भिगोकर पेपर, कपड़े इत्यादि के बीच अंकुरण के लिए रखें। अंकुरण का औसत निकाल कर देखें। यदि यह 85 प्रतिशत से अधिक हो तो उसे अच्छी तरह से

समायोजित करके ही सही बीजदर पर बुआई करें। इससे पौधों की संख्या उचित होगी और उत्पादन भी।

खरपतवाररहित बीज

प्राय: प्रमाणित बीजों में खरपतवार के बीज नहीं होते हैं, फिर भी आश्वस्त हो लें। घर के बीज हों तो भंडारण के समय ही साफ-सफाई करके रखें। यदि नहीं रखा गया हो तो बीज बुआई के समय सूप, छलनी या सफाई की किसी विधि से साफ कर लें। खरपतवार के बीज छोटे होने के कारण अधिक मात्रा में उपस्थित रहते हैं। ये प्रारंभ से ही खेतों में उगकर अनेक प्रकार से फसलों के साथ स्पर्धा करते हैं और उत्पादन में कमी लाते हैं।

क्षेत्र विशेष के बीजों का ध्यान

कुछ बीज उन्नत प्रजाति के हो सकते हैं पर आप के क्षेत्र विशेष के लिए उपयुक्त हों, यह जरूरी नहीं है। कभी-कभी किसान बाहर के क्षेत्रों में अच्छी पैदावार दे रहे बीज ले आते हैं। यदि ऐसा करना है तो प्रारंभ में थोड़े से बीज क्षेत्र में लगाकर उत्पादन क्षमता की जांच की जा सकती है। अक्सर ऐसे बीजों को असफल होते देखा गया है। क्षेत्र विशेष के लिए उपयुक्त बीजों की जानकारी संबंधित क्षेत्र के कृषि विज्ञान केन्द्रों, कृषि विभाग और कृषि पदाधिकारियों से ली जा सकती है।

उत्कृष्ट बीजों की उपलब्धता कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि अनुसंधान केन्द्रों, राजकीय बीज निगम, राष्ट्रीय बीज निगम तथा पंजीकृत बीज विक्रेताओं के पास हो सकती है।

बुआई से पहले बीजोपचार

नन्हे बच्चों को अनेक रोगों से बचाने के लिए तरह-तरह के टीके लगाये जाते हैं। इससे उनमें रोगों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता विकसित होती है। ठीक उसी प्रकार यदि हम बुआई से पूर्व बीजों को उपचारित कर दें, तो उन बीजों से उत्पन्न पौधे संक्रमण और रोगमुक्त हो सकते हैं। बीज क्या है? वह भी तो नन्हे पौधे को समेटे एक जीवन ही है, जो कि भविष्य में बड़े और उत्पादक पौधे बनते हैं। बीजोपचार प्रक्रिया में जिन मुख्य बातों पर ध्यान देना चाहिए वे निम्नलिखित हैं:

उचित दवा

सभी फसलों के लिए अलग-अलग दवायें निर्धारित हैं, जिनसे उपचारित करने पर सही फसल सुरक्षा प्राप्त होती है। धान के लिए इमीसन 6, वेमिस्टीन; गेहूं के लिए वीटावैक्स, वैमिस्टीन; चना, मसूर, मटर, खेसारी, अरहर इत्यादि के लिए थीरम, कैप्टॉन; मक्का, सरसों, राई के लिए कैप्टाफ आदि का उल्लेख किया जा सकता है। कभी-कभी किसान बची हुई दवाई से किसी अन्य फसल के बीज उपचारित कर देते हैं, जो कि कारगर नहीं होता है।

उचित मात्रा

सभी फसल के लिए दवाओं की मात्रा अलग-अलग होती है। यह एक ग्राम से लेकर तीन ग्राम तक हो सकती है। ज्यादातर दवाओं में यह दो ग्राम होती है। यह मात्रा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से होती है।

उचित विधि

किसी भी कृषि कार्य के लिए उचित विधि का निर्धारण किया गया है। यह निर्धारण

बेहतर बीजों के चयन से अधिक पैदावार

सिंचाई एवं जल विकास

जितना महत्व सिंचाई का है, उतना ही महत्व जल निकास का भी है। यदि फसल लगाने के पूर्व इन दोनों के बारे में ध्यान दिया जाए तो अवश्य ही उपज अच्छी होगी। जल निकास वाली भूमि का चुनाव करना चाहिए। अच्छे जल निकास से अनेक परेशानियों से बचा जा सकता है। सिंचाई, पौधों को उनके जीवन रक्षा एवं अच्छी उपज के लिए दी जाती है। पौधों की बढ़वार अवस्था एवं मौसम के अनुसार सिंचाई करनी चाहिए। सभी फसलों की बढ़वार की अवस्था निश्चित रहती है, जिस समय कि उन्हें जल की आवश्यकता होती है। उन अवस्थाओं में हमें जल की पूर्ति अवश्य करनी चाहिए। इससे अच्छी उपज की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। यदि सिंचाई के लिए जल की आपूर्ति कम हो रही हो, तो जो अवस्था सबसे ज्यादा प्रभावित करे उस पर सिंचाई उपलब्ध कराई जाए। सिंचाई की निर्धारित मात्रा देने से आर्थिक लाभ के साथ ही साथ सिंचाई जल की भी बचत होती है।

कृषि मशीनीकरण की अहम भूमिका

रोगग्रस्त पत्तियां

सावधानियां

अनेक रोगरोधी पौध किस्मों का विकास हो चुका है, उनका ही चयन करना चाहिए। साफ-सुथरी खेती का मतलब है कि मेड़ पर उगे खरपतवार, अवांछित पौधों, फसल अवशेषों इत्यादि को नष्ट करना। आरंभ में एक दो रोगग्रसित पौधों को निकालना आसान रहता है। एक-दो कीटों को भी हाथ या यांत्रिक विधि से निकाला जा सकता है। जैविक विधि के अन्तर्गत कवक, विषाणु और जीवाणुओं द्वारा तैयार दवाओं का प्रयोग किया जाता है। इन दवाओं के प्रयोग में सावधानियां बरतनी पड़ती हैं पर ये कारगर हैं। इनके प्रयोग से विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों का खतरा टल जाता है। खेत में जहां-तहां चिड़ियों के बैठने के लिए खूंटे गाड़ें ताकि वे बैठें और कीटों का नियंत्रण करें। कीट-व्याधि नियंत्रण में रसायनों का प्रयोग कम से कम करना चाहिए। यदि आज के समय में हमें रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग नहीं करने को कहा जाये तो यह बात बेमानी होगी। उचित दवा, सही मात्रा, उपयुक्त समय एवं सटीक विधि द्वारा कीटनाशकों का प्रयोग करके वातावरण को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है। दवायें खरीदते समय उनकी निर्माण एवं समाप्त होने की अवधि देख लेनी चाहिए।

अनेक प्रयोगों के बाद ही अनुसंशित किया जाता है। दवाओं से बीजोपचार करने के लिए फसल बुआई के छः से आठ घंटे पहले छांव में बीज को सुखाकर ही बुआई करनी चाहिए। यदि हम दलहनी फसलों की बीजोपचार की बात करें, जहां कट वर्म (कटुआ कीट) की समस्या हो तब एक नियम एफआईआर को याद रखना चाहिए। एफआईआर से ज्यादातर लोग परिचित होंगे। एफ यानी फंजीसाइड (फफूंदनाशक), आई यानी इंसेक्टिसाइड (कीटनाशक) तथा आर यानी राइजोबियम कल्चर। इसी क्रम में बीजों को उपचारित करना चाहिए। चना और मसूर के लिए एक कि.ग्रा. बीज में दो ग्राम थीरम या कैप्टॉन मिलाना चाहिए। इसके लिए बीज को फर्श या पॉलीथीन पर छांव में फैला दें। हल्का पानी छिड़कें उसके बाद पाउडर को भुरकें, फिर हाथ में दस्ताने पहनकर या पॉलीथीन बांधकर अच्छी तरह मिलायें और छांव में सूखने दें। छः घंटों बाद फिर कीटनाशक (क्लोरोपाइरिफॉस) की 10 मि.ली. दवा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से मिलाएं एवं छांव में ही सूखने दें। इसके छः घंटे उपरांत राइजोबियम कल्चर से उपचारित करें। राइजोबियम कल्चर के पैकेट पर लिखे निर्देश के अनुसार ही उपचारित करें। अन्य फसलों को, जिन्हें सिर्फ फफूंदनाशक दवा से उपचारित करना है, में ऊपर बताई गई विधि का प्रयोग करें। अनेक फसलों जैसे कि आलू में कन्द तथा गन्ने में फफूंदनाशक दवा के घोल में 10 से 20 मिनट तक डुबोकर तथा छांव में सुखाकर 24 घंटे के अन्दर बुआई करनी चाहिए।

भूमि की तैयारी

ज्यादातर किसान इस कार्य को पूरी दक्षता से करते हैं। अलग-अलग फसल के लिए भिन्न प्रकार की तैयारी करनी चाहिए। ध्यान देने वाली बात यह होती है कि पहले लगाई गई फसल के अवशेष, खरपतवार एवं अवांछित खरपतवारों को चुनकर हटा देना चाहिए। ये अनेक तरह के रोगों एवं कीटों के आश्रय तथा वाहक हो सकते हैं। अतः उन्हें यहां-वहां फेंकना नहीं चाहिए, बल्कि जला देना चहिए।

खाद एवं उर्वरक प्रयोग

उर्वरक की सही मात्रा जानने एवं उसकी उपयोग दक्षता को बढ़ाने के लिए सर्वप्रथम अपने खेत की मिट्टी की जांच करवानी चाहिए। मिट्टी जांच के लिए नमूने अप्रैल-मई में इकट्ठे करने चाहिए। नमूने लेने की विधि भी निर्धारित है। इसमें ध्यान देना यह है कि यदि अच्छा परिणाम चाहते हैं तो ज्यादा से ज्यादा जगहों से नमूने लें। नमूने लेने वाली जगह ऐसी हो जहां खाद या उर्वरक न रखे जाते हों, पेड़ की छाया न पड़ती हो, जमीन समतल हो एवं मेड़ से कम से कम आधा मीटर अन्दर हो। ऊपरी सतह की घास छीलकर हटा दें एवं खुरपी से छः इंच (15 सें.मी.) चौड़ा, छः इंच गहरा एवं इतना ही लम्बा चौकोर गड्ढा बना लें। अब उस गड्ढे की दीवारों से खुरच-खुरच

समय रहते रोग नियंत्रण

भंडारण

उचित तरीके से उपज का भंडारण करना चाहिए। हमारी पूरी मेहनत एवं पूंजी की कमाई अनुचित भंडारण के कारण नष्ट होने लगती है। भंडारण के लिए अनाज को अच्छी तरह धूप में सुखाकर भंडारित करें। भंडारण से पूर्व भंडारगृह की अच्छी तरह से साफ-सफाई कर चूने से पुताई करें। अनाज दरारों और बिलों को सीमेन्ट से बन्द करें। मॉलिथियोन दवा का छिड़काव करें। रखे जाने वाले बोरे को साफ करके मॉलिथियोन के घोल में डुबोकर सुखा लें। फिर अनाज को उन बोरों में भरकर कीटनाशी दवा जैसे सल्फॉस इत्यादि की टिकिया देकर बोरे के मुंह को बंद कर दें। बोरों को दीवार से हटाकर लकड़ी के तख्तों पर रखना चाहिए। भंडारण के लिए सबसे अच्छा मेटल बीन रहता है। गांवों में किसान भूसे के ढेर में अनाज से भरे बोरों को रखकर भंडारित करते हैं, जिससे कीटों से रक्षा होती है।

कर नमूने लें एवं पॉलीथीन में जमा करते जायें। फिर खेत से इकट्ठा किये गये नमूनों को मिलाकर छांव में फैलायें। इसमें से कंकड़, जड़ों इत्यादि को चुनकर फेंक दें। फिर इसे अच्छी तरह मिलाकर, गोलाकार में फैलाकर चार हिस्सों में बांटें। उसमें से दो हिस्से पॉलीथीन में रखकर कागज पर डॉटपेन या पेन्सिल से अपना नाम, पता, प्लॉट नम्बर, पहले किये गये उर्वरक व्यवहार का ब्यौरा इत्यादि भी दें। इसके बाद ली जाने वाली फसल का नाम लिखकर कृषि विज्ञान केन्द, कृषि अनुसंधान संस्थान या कृषि विश्वविद्यालय में जमा करें।

पौधों की अच्छी बढ़वार के लिए सोलह पोषक तत्वों की जरूरत होती है। इनमें से तीन-कार्बन, हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन की पूर्ति जल एवं वायु द्वारा स्वयं ही हो जाती है। कुछ सूक्ष्म पोषक तत्वों की, जिनकी जरूरत बहुत ही कम मात्रा में होती है, की पूर्ति मिट्टी द्वारा हो जाती है। कुछ मुख्य अन्य तत्वों जैसे कि नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, जिंक, बोरॉन, आयरन आदि की व्यवस्था हमें करनी पड़ती है। यही कारण है कि मिट्टी की जांच अत्यावश्यक है। पहले प्रत्येक फसल में गोबर की सड़ी खाद दी जाती थी, जो कि मिट्टी की संरचना एवं स्वास्थ्य को बनाये रखने के साथ ही साथ अनेक पोषक तत्वों को भी उपलब्ध कराती थी। अब इसका अभाव देखा जा रहा है। जिन किसानों को प्रत्येक वर्ष गोबर की सड़ी खाद उपलब्ध नहीं हो पाती है, वे कम से कम दो या तीन वर्ष में एक बार अवश्य दें।

उर्वरक के लिए किसान नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस का प्रयोग करते हैं, पर पोटाश को भूल जाते हैं। पोटाश को बहुत कम ही लोग व्यवहार में लाते हैं तथा नाइट्रोजन (यूरिया के रूप में) का अंधाधुंध प्रयोग करते हैं। उर्वरक प्रयोग के समय ध्यान देने वाली मुख्य बातें निम्नलिखित हैं:

संतुलित मात्रा में उर्वरक प्रयोग

फसलों पर किए गए अनेक अनुसंधानों के बाद कृषि वैज्ञानिकों द्वारा उर्वरकों की मात्रा अनुशंसा की गई है। वह फसलों में पकने की अवधि, प्रजाति एवं मौसम के अनुसार निर्धारित है। अत: सिफारिश के अनुसार संतुलित मात्रा में उर्वरक प्रयोग करने से अच्छी उपज ली जा सकती है। बहुत से क्षेत्रों में जिंक की कमी देखी जा रही है। अत: जिंक सल्फेट का प्रयोग

फसल पर लगने वाले कीटों एवं रोगों पर नजर

विशेषज्ञों से परामर्श

छ: फसल में एक बार अवश्य करें। जिंक सल्फेट, 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से देनी चाहिए। इसे किसी भी उर्वरक के साथ न मिलायें।

उचित प्रयोग विधि

उर्वरकों में जिंक, फॉस्फोरस और पोटाश का प्रयोग जमीन की तैयारी के वक्त अंतिम जुताई के समय करें। नाइट्रोजन का प्रयोग संस्तुति के अनुसार आधी या एक तिहाई मात्रा बुआई के वक्त दें और शेष मात्रा को टॉप ड्रेसिंग के तौर पर दें। ध्यान देने वाली बात यह है कि सिंचाई के बाद नाइट्रोजन का प्रयोग शाम के समय करें। ज्यादातर देखा जाता है कि यूरिया के प्रयोग के बाद सिंचाई की जाती है, जो कि बिल्कुल गलत है। इससे यूरिया की हानि होती है।

सही प्रकार के उर्वरक

उर्वरक खरीदते समय ध्यान दें कि वह सही है या नहीं। एक और बात ध्यान देने वाली है कि आप कौन सी फसल लगा रहे हैं। जैसे कि आप तिलहनी फसल लगा रहें है तो फॉस्फोरस उपलब्धता के लिए सिंगल सुपर फॉस्फेट प्रयोग में लायें। इससे पौधों को सल्फर भी मिल जायेगा। जब दलहनी फसल लगायें, तो डीएपी का प्रयोग फॉस्फोरस उपलब्ध करने के लिए करें। दलहनों की अच्छी बढ़वार एवं फलन के लिए उच्च ग्रेड फॉस्फोरिक उर्वरक की आवश्यकता होती है।

समय पर बुआई एवं उचित दूरी

समय पर बुआई अच्छी उपज लेने के लिए अत्यावश्यक है। इसके अनेक फायदे हैं। इससे कीट-व्याधियों एवं प्राकृतिक आपदाओं से बचाव होता है। अनुकूल वातावरण में पौधों की बढ़वार और उपज अच्छी होती है।

समय के पहले या बाद में बुआई करने से उपज में भारी कमी आती है। कभी-कभी किसान समय पर बुआई नहीं कर पाते। इसके पीछे देर से खेत का खाली होना, पानी लगा रहना, खेत तैयार करने वाले साधनों की कमी इत्यादि कारण हो सकते हैं। ऐसे में विलम्ब से बुआई के लिए बाध्य किसानों को बुआई के लिए उपयुक्त बीज प्रभेदों का चयन करना चाहिए। इससे उपज में ज्यादा कमी नहीं आती। विलम्ब से बुआई के लिए उन्नत कृषि तकनीकों का भी उपयोग किया जाना चाहिए। रबी में गेहूं की बुआई विलम्ब से करने के लिए जीरोटिल सीड ड्रिल मशीन का प्रयोग बहुत उपयोगी पाया गया है।

पौधों से पौधों तथा कतार से कतार की दूरी पर अनेक कार्य कृषि शोध संस्थानों, विश्वविद्यालयों आदि में हो चुके हैं तथा दूरियां निर्धारित कर ली गई हैं। अत: पौधों को संस्तुत दूरी पर ही लगाने की कोशिश की जानी चाहिए। दूरी सही रहने पर पौधों को हवा, पानी, रोशनी तथा पोषक तत्वों के लिए आपस में प्रतिस्पर्धा नहीं करनी पड़ती। बढ़वार सही मिलती है तथा उपज भी अच्छी होती है। ज्यादा घना पौधा लगा देने से आपसी प्रतिद्वंदिता तो बढ़ ही जाती है, साथ ही साथ कीट-व्याधियों का प्रकोप भी बढ़ जाता है। इससे कृषि कार्यों में कठिनाई होती है। ऐसे में कमजोर पौधे कम उपज दे पाते हैं।

समय-समय पर निगरानी

यह ऐसी प्रक्रिया है, जिसे सभी कृषक अवश्य करते हैं। कभी-कभी एक-दो पौधे रोगग्रसित हों या कीट से आक्रांत हों या खेत में एक-दो खरपतवार दिखें तो उनकी अनदेखी कर दी जाती है। लेकिन ध्यान देने वाली बात यह है कि ये एक-दो ही खरपतवार धीरे-धीरे पूरे खेत पर आधिपत्य जमा लेते हैं एवं अपना प्रभाव दिखाने लगते हैं। कीटों का कई जीवनचक्र एक ही मौसम में होता है। अत: वे एक से दो हजार की संख्या में पहुंच सकते हैं। ऐसे में रोगों को भी फैलने में ज्यादा समय नहीं लगता।

समय पर कीटनाशकों का छिड़काव

फसल सुरक्षा

शुरूआत से ही इस पर ध्यान दिया जाये तो बाद में परेशानियां कम होती हैं। फसल सुरक्षा के अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए :

खरपतवार नियंत्रण

आप अपनी फसल की बहुत अच्छी देखभाल करते हैं और खरपतवार की देखभाल नहीं की जाती, फिर भी वे खूब पल-बढ़कर फसलों के प्रतिद्वंदी बन जाते हैं। उनमें अपनी आन्तरिक शक्ति फसलों से ज्यादा होती है। फसलों को उपलब्ध होने वाले पोषक तत्वों, जल, हवा, सूर्य प्रकाश इत्यादि की मात्रा के बड़े हिस्से का वे भरपूर उपयोग करते हैं। फसलों को अप्रत्यक्ष रूप में हानि पहुंचाते हैं। ये अनेक प्रकार की कीट-व्याधियों के वाहक और आश्रय के रूप में भी कार्य करते हैं। इनका नियंत्रण शुरू से ही करना चाहिए। जिन खेतों में इनकी आक्रान्तता अत्यधिक हो। वहां ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई अवश्य करें तथा फसलचक्र अपनायें। फसल लगाने के समय खरपतवारनाशी दवा का प्रयोग करें। प्रत्येक फसल के लिए अलग-अलग दवायें एवं उनकी मात्रा भी निर्धारित हैं।

संस्तुत एवं संतुलित उर्वरक प्रयोग

कीट-व्याधि नियंत्रण

कीट-व्याधि द्वारा कुल फसलोत्पादन का एक बड़ा हिस्सा नष्ट हो जाता है। अत: इसे उपयुक्त समय, विधि एवं सही देखभाल द्वारा घटाया जा सकता। अवरोधी किस्मों का चयन, ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई, बीजोपचार, साफ-सुथरी खेती, रोगग्रस्त पौधों को नष्ट करना, हाथ एवं यांत्रिक विधि से कीट के अंडों, लार्वों एवं रोगग्रस्त पौधों को नष्ट करना, रासायनिक एवं जैविक विधि से नियंत्रण इत्यादि समेकित कीट-व्याधि नियंत्रण के अंतर्गत आता है।

चूहों से रक्षा

चूहे, खेतों एवं खलिहानों में फसलों को बहुत हानि पहुंचाते हैं। उनके नियंत्रण के लिए सामूहिक रूप से अभियान चलाने की आवश्यकता है। समय-समय पर खेतों का गहन निरीक्षण करें। चूहों के जीवित बिलों को पहचानें। इसके लिए दिखने वाले सभी बिलों को मिट्टी से बन्द कर दें। पुन: दूसरे दिन जाकर उन बिलों का निरीक्षण करें। खुले पाये गये बिल के जीवित होने का पता चलता है। उनमें चूहे मारने वाली दवायें खाद्य पदार्थों में मिलाकर दें। वारफेरिन दवा के एक भाग में उन्नीस भाग अनाज के टुकड़ों के साथ थोड़ा तीसी तेल को मिलाकर बिलों में रखें। वारफेरिन दवा के गंधहीन होने के कारण चूहे, इसे आसानी, से खाते हैं एवं खाकर मर जाते हैं। चूहे, खासकर रबी खाद्यान्न फसलों को बहुत हानि पहुंचाते हैं।

कटाई

फसल की बुआई की तरह ही कटाई भी उचित समय पर करनी चाहिए। कटाई के समय साधारणत: श्रमिकों की समस्या आती है। इसके लिए कटाई के यंत्रों का उपयोग कर समस्या से कुछ हद तक निदान पाया जा सकता है। कटाई के बाद फसल को जल्द से जल्द अपने खेत से खलिहान में पहुंचायें।

दलहनी फसलों की पर्यावरण रक्षा एवं मृदा सुधार में भूमिका

मुकेश कुमार मीना[1], हरि सिंह मीना[1], सुरेन्द्र कुमार मीना[1], बिन्द्र सिंह[2] और **अंकित मलिक[2]**
भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

"दलहनी फसलों का खाद्य सुरक्षा के साथ-साथ पर्यावरण एवं मृदा के स्वास्थ्य सुधार में भी महत्वपूर्ण योगदान है। इन दिनों हमारी कृषि प्रणाली, अनेक समस्याओं जैसे-मृदा स्वास्थ्य, जल की कमी, वैश्विक तपन, जैव विविधता, नाइट्रोजन की कमी आदि से जूझ रही है। इनके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन एवं गुणवत्ता में दिनों-दिन कमी आ रही है। इन सभी समस्याओं के समाधान में ये दलहनी फसलें प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। दलहन फसल उत्पादन, मृदा उर्वरता बनाये रखने की अपनी सहज क्षमता के कारण टिकाऊ खेती में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इसलिए दलहन उत्पादन को बदलते परिवेश में मानव पोषण, पशुधन आहार, पर्यावरण तथा मृदा उर्वरता का टिकाऊ स्रोत कहा जा सकता है। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए दलहन उत्पादन को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।"

लगभग 5,000 से भी अधिक वर्षों से मानव दलहनी फसलों की खेती कर रहा है। ये फसलें दुनिया के अधिकांश क्षेत्रों में उगाई जाती हैं। विश्व में इनके क्षेत्रफल एवं उत्पादन में भारत का प्रथम स्थान है। ये अपेक्षाकृत कम लागत की खाद्य फसलें हैं। मूंग, उड़द, अरहर, चना, लोबिया एवं मटर मुख्य रूप से उगाई जाने वाली दलहनी फसलें हैं। ये फसलें किसानों और उपभोक्ताओं में बेहद लोकप्रिय हैं। अधिकांश किसानों को इनके पर्यावरणीय एवं मृदा उर्वरा शक्ति के लाभ के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं होती है।

जलवायु परिवर्तन को वैश्विक तपन भी कहा जाता है, जिसका अर्थ पृथ्वी की सतह के तापमान में औसत वृद्धि का होना है। इसका मुख्य कारण मानव की गतिविधियों से वायुमंडल में विभिन्न प्रकार की गैसों जैसे-कार्बनडाईऑक्साइड नाइट्रसऑक्साइड, मीथेन ओजोन तथा क्लोरोफ्लोरोकार्बन का अधिक उत्सर्जन होना है। वातावरण में इन गैसों की मात्रा में वृद्धि होने के कारण ज्यादा सौर ऊर्जा अवशोषित होती है तथा यह ऊष्मा में परिवर्तित हो जाती है। इसे हरितगृह प्रभाव भी कहते हैं। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन कृषि विकास में बहुत

[1]पादप कार्यिकी संभाग, [2]आनुवंशिकी संभाग

बड़ी चुनौती बन गया है और भविष्य में खाद्य उत्पादन को मुख्य रूप से प्रभावित करेगा। वास्तव में पिछले दशक में जलवायु विषमतायें जैसे कि वर्षा के समय व स्थान में परिवर्तन, सूखा व बाढ़ इत्यादि घटनाओं की आवृति बढ़ रही है।

आधुनिक कृषि प्रणाली में रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों के अंधाधुध प्रयोग से मृदा के स्वास्थ्य में लगातार गिरावट आ रही है। इस बात को ध्यान में रखते हुए केन्द्र सरकार ने वर्ष 2015 से मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना की शुरुआत की है। इसके तहत मृदा के पोषक तत्वों व गुणवत्ता की जांच की जाती है। इससे किसान पता लगा सकते हैं कि उनके खेत की मिट्टी में पोषक तत्व कितनी मात्रा में उपलब्ध हैं। इससे किसानों द्वारा उचित पोषक तत्व प्रबंधन करके अधिक उत्पादन प्राप्त करने के साथ-साथ मृदा उर्वरता एवं स्वास्थ्य को बरकरार रखा जा सकता है।

दलहनी फसलों का योगदान

मृदा में नाइट्रोजन

दलहनी फसलों की जड़ग्रंथियों में राइजोबियम बैक्टीरिया पाये जाते हैं, जो इन फसलों की जड़ों में सहजीवी संबंध बनाकर वायुमंडलीय नाइट्रोजन का मृदा में स्थिरीकरण करते हैं। इससे मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि होती है। इसलिए इन फसलों को कम नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है।

इन फसलों की कटाई के बाद इनके अवशेष मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा बनाए रखने में सहायक होते हैं। ये अग्रिम फसल के उत्पादन में नाइट्रोजन उर्वरकों की मात्रा के प्रयोग को कम कर देते हैं। इन फसलों को हरी खाद के विकल्प के तौर पर उगाया जा सकता है।

सारणी: दलहनी फसलों द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण

क्र.सं.	फसल	नाइट्रोजन स्थिरीकरण मात्रा (कि.ग्रा./हैक्टर)
1.	चना	23-97
2.	चवला	9-125
3.	मूंग	50-66
4.	मसूर	4-200
5.	उड़द	119-140

मृदा के कार्बनिक पदार्थों में वृद्धि

मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता कार्बनिक पदार्थों की मात्रा पर निर्भर करती है। दलहनी फसलों के अवशेषों में कार्बन एवं नाइट्रोजन अनुपात कम होने के कारण ये सूक्ष्मजीवों द्वारा कम समय में आसानी से विघटित कर दिए जाते हैं। इसके कारण ये फसलें मृदा में नाइट्रोजन एवं कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ाने में सहायक होती हैं।

मृदा रंध्रता में सुधार

दलहनी फसलों में मूसला जड़तंत्र होने के कारण इनकी जड़ें लगभग 6-8 फीट गहराई तक चली जाती हैं। इन फसलों के अवशेष में नाइट्रोजन अधिक मात्रा में होने के कारण ये केंचुओं की संख्या में वृद्धि करती हैं। गहरा जड़तंत्र व केंचुओं के बिल मृदा रंध्रता में वृद्धि करके मृदा वायु संचार व जल परिसंचरण को बढ़ावा देते हैं।

मृदा की उर्वरता को बढ़ाती हैं दलहनी फसलें

जलवायु परिवर्तन और दलहन उत्पादन का महत्व

- खाद्यान्न फसलों की तुलना में दलहनी फसलों में उर्वरकों का प्रयोग कम मात्रा में किया जाता है, जिससे लगभग 5-7 गुना कम हरितगृह गैसों का उत्सर्जन होता है।
- नाइट्रोजन उर्वरक बनाने वाले कल-कारखानों से निकलने वाली कार्बनडाईऑक्साइड गैस वातावरण को दूषित करती है। इससे वैश्विक तापमान में वृद्धि होती है, जबकि दलहनी फसलें प्रकाश संश्लेषण द्वारा वातावरण की कार्बनडाईऑक्साइड को ग्रहण करके वैश्विक तापमान के प्रभाव को सीमित करती हैं।
- दलहनों में बहुत ही कम अवधि में परिपक्व होने वाली उन्नत किस्मों के उपलब्ध होने की वजह से मौसम परिवर्तन की स्थितियों में इन्हें आसानी से उगाया जा सकता है।
- दलहनों में अन्य फसलों की तुलना में विपरीत वातावरण के प्रति अधिक अनुकूलता पाई जाती है।
- जब दलहनों का प्रयोग पशुओं के आहार में किया जाता है, तो उच्च प्रोटीन मात्रा की वजह से भोजन रूपान्तरण अनुपात बढ़ जाता है। इससे जुगाली करने वाले पशुओं से मीथेन गैस का उत्सर्जन कम होता है।
- दलहनों की जड़ें मृदा में कार्बोक्सिलिक अम्ल स्रावित करती हैं, जो कि कैल्शियम व आयरन फॉस्फेट के रूप में बंधित फॉस्फोरस को घुलनशील फॉस्फेट आयनों में बदल देता है। इस प्रकार से ये फसलें फॉस्फोरस का अधिक दक्षता के साथ उपयोग करती हैं।
- दलहन, मृदा में जल परिसंचरण की दर में सुधार करता है। इससे कि जल धारण क्षमता बढ़ जाती है और सूखे से निपटने में सहायता मिलती है।
- मांसाहारी प्रोटीन की तुलना में दालों की प्रोटीन पैदा करने में कम पानी की आवश्यकता होती है।

दलहन का महत्व

दलहनी फसलें अपने बीज, फलियों में बनाती हैं। यह घास, अनाज और अन्य गैर फलियों वाली फसलों से स्पष्ट रूप से भिन्न होती हैं। इनमें नाइट्रोजन पोषक तत्व की मांग अन्य फसलों की तुलना में कम होती है। इनकी जड़ों की गांठों में राइजोबियम जीवाणु पाये जाते हैं, जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके पौधों के उपलब्ध करवाते हैं। इससे मृदा की उर्वरता में वृद्धि होती है दालों में 20 से 30 प्रतिशत प्रोटीन पाये जाने की वजह ये यह शाकाहारी लोगों के लिए प्रोटीन का मुख्य स्रोत मानी जाती हैं। इनमें प्रचुर मात्रा में आहारीय रेशे तथा आवश्यक अमीनो अम्ल (मेथियोनीन व लाइसिन) पाये जाने की वजह से ये अनाजों के साथ पोषण के रूप में परिपूरक होती हैं।

पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण

फसलचक्र में उथले जड़तंत्र वाली फसलें केवल मृदा की ऊपरी सतह से ही पोषक तत्वों को ग्रहण कर पाती हैं। अधिकांश पोषक तत्वों की मात्रा, पानी के साथ घुलकर मृदा की निचली सतह में चली जाती है। इस कारण ये फसलें इनका उपयोग नहीं कर पाती हैं। गहरा जड़तंत्र होने के कारण दलहनी फसलें इनको आसानी से ग्रहण करके ऊपरी मृदा सतह में पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण करती हैं।

चने की बम्पर फसल

मृदा संरचना में सुधार

दलहनी फसलों की जड़ों में ग्लोमेलिन प्रोटीन पायी जाती है, जो कि गोंद की तरह मृदा कणों को स्थिरता प्रदान करती है। इससे मृदा संरचना में सुधार होता है तथा मृदा जल संचयन में वृद्धि एवं मृदा अपरदन में कमी होती है।

मृदा पी-एच में सुधार

जब दलहनी फसलें वायुमंडलीय नाइट्रोजन का मृदा में स्थिरीकरण करती हैं, तब इस प्रकिया द्वारा मृदा में धनायनों की संख्या ऋणायनों की अपेक्षा बढ़ जाती है। इसके परिणामस्वरूप मृदा का पी-एच मान कम हो जाता है।

मृदा में सूक्ष्मजीव विविधता

खाद्यान्न फसलें जैसे गेहूं, धान, मक्का व ज्वार के अवशेषों की तुलना में दलहनी फसलों के अवशेषों में कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात कम होने के कारण ये सूक्ष्मजीवों द्वारा खनिजीकरण के लिए अधिक उपयुक्त होती हैं। इसलिए दलहनी फसलों के अवशेषों वाली मृदा में सूक्ष्मजीवों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है।

फसलों का कीट व रोग से बचाव

लगातार अनाज वाली फसलों को उगाने से उनमें लगने वाले कीट एवं रोगों का प्रकोप अधिक होने लगता है। सामान्यत: अनाज वाली फसलों पर लगने वाले कीट एवं रोगों का प्रकोप दलहनी फसलों पर नहीं होता है। कीट एवं रोगों के रोगजनकों को जीवनचक्र पूरा करने के लिए उचित माध्यम नहीं मिल पाता है। इसलिए इन फसलों को फसलचक्र में शामिल करने से कीट व रोगों के निवारण में सहायता मिलती है।

खरपतवार नियन्त्रण

कुछ दलहनी फसलें जैसे मोठ, मूंग, चवला एवं मूंगफली आवरण फसलों की श्रेणी में आती हैं। इन फसलों को अंतरसस्य प्रणाली में शामिल करने से खरपतवारों की वृद्धि एवं विकास के लिए उचित मात्रा में प्रकाश नहीं मिल पाता है। इसके फलस्वरूप खरपतवार प्रबंधन में मदद मिलती है।

जल संरक्षण

सामान्यत: दलहनी फसलों को कम पानी की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त ये फसलें अपनी पत्तियों से भूमि की ऊपरी सतह को ढक लेती हैं, जिससे भूमि की सतह से पानी का वाष्पीकरण कम होता है। ■

प्रोटीन का खजाना अरहर

IFFCO

पूर्णतः सहकारी स्वामित्व
Wholly owned by Cooperatives

50 1967 2017
स्वर्ण जयंती
Golden Jubilee

इफको के स्वर्णिम 50 वर्ष

कृषि, सहकारिता एवं ग्रामीण विकास को समर्पित

नीम लेपित यूरिया | एन पी के | डी ए पी | एन पी | बॉयो फर्टिलाइजर

वॉटर सोल्यूबल फर्टिलाइजर | माईक्रो न्यूट्रीएन्ट फर्टिलाइजर

Follow us :

YouTube IFFCO live
iffcolive.com

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व

INDIAN FARMERS FERTILISER COOPERATIVE LIMITED

IFFCO Sadan, C-1 District Centre, Saket Place, New Delhi - 110017, INDIA
Phones : 91-11-26510001, 91-11-42592626. Website : www.iffco.coop

जलवायु परिवर्तन से मछलियों पर मंडराता खतरा

जलवायु परिवर्तन विशेषांक

> "भाकृअनुप-केन्द्रीय मात्स्यिकी शिक्षा संस्थान, मुंबई की पत्रिका 'जलचरी' में प्रकाशित एक ओर रिपोर्ट में बताया गया है कि जलवायु परिवर्तन खासकर तापमान में वृद्धि से पूरे विश्व में मछली उत्पादन पर असर पड़ रहा है। इस कारण मछलियों, जलीय पौधों, कोरल और स्तनपाई प्रजातियों की मृत्युदर में वृद्धि हो रही है। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि जलवायु परिवर्तन के कारण समुद्र की जैव विविधता में अपना महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले प्रवाल भित्तियों, जिन्हें कोरल रीफ कहते हैं, की 10 प्रतिशत प्रजातियां नष्ट हो चुकी हैं। इसके साथ ही 30 प्रतिशत गंभीर रूप से प्रभावित हैं। ग्लोबल कोरल रीफ मॉनीटरिंग नेटवर्क, ऑस्ट्रेलिया का अनुमान है कि वर्ष 2050 तक सभी कोरल भित्तियों का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा।"

जर्मनी के बॉन शहर में आयोजित 23वें जलवायु सम्मेलन में जलवायु परिवर्तन के कारण जलकृषि पर पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा की गई थी। इस सम्मेलन में इस बात पर चिंता व्यक्त की गई कि दुनिया भर के समुद्र, जलवायु परिवर्तन से प्रभावित हो रहे हैं, जिसका असर समुद्री जलजीवों पर पड़ रहा है। जलवायु परिवर्तन के कारण भारत में पाई जाने वाली मछलियों की 70 वंशों की 275 मत्स्य प्रजातियों पर खतरा मंडरा रहा है।

भाकृअनुप-केंद्रीय समुद्री मत्स्य अनुसंधान संस्थान (सीएमएफआरआई), कोच्चि की 'जलवायु परिवर्तन और मात्स्यिकी' नाम से जारी रिपोर्ट के अनुसार गत 45 वर्षों में भारतीय सागर तट पर समुद्र की सतह का तापमान 0.2 से 0.3^0 सेल्सियस बढ़ गया है। पृथ्वी का तापमान बढ़ने और उसके कारण जलवायु के प्रारूप में परिवर्तन से मछलियों पर गंभीर असर पड़ना शुरू हो गया है। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि पृथ्वी का तापमान वर्ष 2021 तक 3^0 सेल्सियस तक बढ़ने की आशंका है। इस वृद्धि से अत्यंत विनाशकारी घटनाएं बाढ़, सूखा, ग्लेशियर का पिघलना और समुद्र स्तर में उतार-चढ़ाव आना आदि हो सकती है। इस सबके कारण समुद्री मछलियां प्रभावित होंगी।

हरित क्रांति की सफलता के बाद भारत जब नीली क्रांति की तरफ तेजी से बढ़ रहा है, ऐसे में अगर बढ़ते हुए तापमान को रोकने में सफलता नहीं मिली तो भारत में मछली उत्पादन घट जाएगा।

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की रिपोर्ट के अनुसार मछली उत्पादन के क्षेत्र में विश्व में भारत का दूसरा स्थान है। इसके अतिरिक्त भारत, विश्व में दूसरा सबसे बड़ा एक्वाकल्चर यानी जल से लाभान्वित होने वाला देश भी है। देश में मछुआरों की संख्या 145 लाख है और यहां तटीय लंबाई 8118 कि.मी. है। यहां पर मछली पकड़ने की 2 लाख नौकाएं हैं। पिछले साल देश से 5 अरब अमेरिकी डॉलर मूल्य का मछली का निर्यात किया गया। देश में पोषक आहार की बढ़ती मांग पूरी करने के लिए मछली पालन क्षेत्र की भूमिका महत्वपूर्ण बनती जा रही है।

मछली पकड़ना है आय का बड़ा स्रोत

भाकृअनुप-केन्द्रीय मात्स्यिकी शिक्षा संस्थान, मुंबई की रिपोर्ट के अनुसार भारत में मछलियों की 70 वंशों की 275 प्रजातियां

जैव विविधता में मछलियों का महत्वपूर्ण योगदान

जलवायु परिवर्तन से मछलियों के व्यवहार में परिवर्तन

निक्रा परियोजना

जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए भारत सरकार के कृषि विभाग ने राष्ट्रीय जलवायु अनुकूल कृषि पहल परियोजना (निक्रा) शुरू की है। यह फसलों, पशुधन एवं मत्स्य सहित भारतीय कृषि को जलवायु में अंतर और जलवायु परिवर्तन के अनुकूल बनाने के लिए प्रमुख कार्यक्रम के रूप में चलायी जा रही है। 350 करोड़ रुपये के आंवटन के साथ 11वीं पंचवर्षीय योजना में यह परियोजना शुरू की गई थी, जो आज भी जारी है। भाकृअनुप-केंद्रीय समुद्री मत्स्य अनुसंधान संस्थान, इस परियोजना के रणनीतिक अनुसंधान घटक का मुख्य संस्थान है। भारतीय मत्स्य पर जलवायु संबंधी अध्ययन के लिए यह नोडल एजेंसी भी है।

दिनोंदिन बढ़ रहा है समुद्र का तापमान

प्रोटीन और विटामिन का स्रोत हैं मछलियां

पाई जाती हैं। मछली कुदरत की एक अनोखी देन है। इतिहास के अनुसार लगभग 40 करोड़ साल पहले मछली को खोजा गया था। अभी तक पूरी दुनिया में मछलियों की 28,000 से अधिक विभिन्न प्रकार की प्रजातियों की खोज हो चुकी है। हर साल नई प्रकार की मछलियां वैज्ञानिकों की मेहनत से सामने आ रही हैं। अगर जलवायु परिवर्तन से समय रहते नहीं निपटा गया तो मछलियों के अस्तित्व पर संकट आ सकता है।

मछली को संस्कृत में मीन, हिन्दी में मत्स्य, पंजाबी में माछो, अंग्रेजी में फिश, मराठी में मासोली, तमिल में चापा, तेलगू में मीन, फारसी में माही और उर्दू में मछली के नाम से जाना जाता है। मछली पालन सबसे पहले चीन में शुरू हुआ था। इतिहासकारों के अनुसार 475 ईसा पूर्व फौन ली की लिखी द क्लासिक ऑफ फिशर कल्चर मछली पालन पर लिखी दुनिया की पहली किताब है।

जल उष्णता और समुद्र का जलस्तर बढ़ने से मछली और मछुआरों पर बुरा प्रभाव पड़ने की आशंका है। इसलिए इस क्षेत्र में व्यापक आकलन और विश्लेषण अनिवार्य है। भारतीय समुद्र क्षेत्र में मछलियों के वितरण और भोजन की उपलब्धता पर जलवायु एवं समुद्री जलवायु के बीच संबंध का अध्ययन करने के लिए भाकृअनुप-केंद्रीय समुद्री मत्स्य अनुसंधान संस्थान (सीएमएफआरआई), कोच्चि ने 19.5 मीटर लंबा मत्स्य अनुसंधान पोत एफ.वी. सिल्वर पोमपानो खरीदा है। इसमें सीएमएफआरआई के विभिन्न केंद्रों पर 44 वैज्ञानिक काम कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त परियोजना में 23 शोधार्थी भी शामिल हैं। इस कार्य में पेलेजिक, डेमरसल, क्रस्टेसियन्स और मॉल्युस्कन प्रजातियों का प्रतिनिधित्व करने वाली 10 चुनिंदा नस्लों के वितरण, प्रचुरता और स्पॉनिंग व्यवहार पर जलवायु परिवर्तन के असर का पता लगाना शामिल है। ■

(स्रोतः भाकृअनुप-केंद्रीय समुद्री मत्स्य अनुसंधान संस्थान (सीएमएफआरआई), कोच्चि की वेबसाइट; भाकृअनुप-केन्द्रीय मात्स्यिकी शिक्षा संस्थान, मुंबई की पत्रिका 'जलचरी और पत्र सूचना कार्यालय की वेबसाइट')

जलजीव प्रजातियों के लुप्त होने का बढ़ता खतरा

बढ़ते वायु प्रदूषण से अन्न संकट

“ वायु प्रदूषण के परिदृश्य में अगर भारत को देखें तो गेहूं पर अनुसंधान करने वाले भाकृअनुप-भारतीय गेहूं और जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल की ‘स्वर्णिमा’ पत्रिका में प्रकाशित एक लेख में यहां के वैज्ञानिकों ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि अगर मार्च के औसत तापमान में एक डिग्री सेल्सियस की वृद्धि होती है तो गेहूं के उत्पादन में 5 प्रतिशत तक का नुकसान हो सकता है। रिपोर्ट में इस बात की चिंता जताई है कि जिस तेजी से तापमान बढ़ रहा है, उससे गेहूं की फसल को नुकसान होने की बहुत आशंका है। इस रिपोर्ट के अनुसार 2021 तक गेहूं के उत्पादन में चार से पांच मिलियन टन उत्पादन कम होने की आशंका है। गेहूं की फसल, तापमान के प्रति अधिक संवेदनशील होती है और एक निश्चित तापमान के बाद गेहूं की बालियों में स्वस्थ और सुडौल दाने नहीं बन पाते हैं। ”

विश्व पर्यावरण दिवस प्रतिवर्ष 5 जून को मनाया जाता है। इसका उद्देश्य पर्यावरण से संबंधित मामलों के बारे में विश्वभर में जागरूकता पैदा करना और इसके प्रति राजनीतिक ध्यान आकर्षित करके कार्यवाई को प्रोत्साहित करना है। इस वर्ष विश्व पर्यावरण दिवस 2019 का विषय है, ‘वायु प्रदूषण’ है। इसकी मेजबानी इस वर्ष चीन को सौंपी गई है। पिछले साल विश्व पर्यावरण दिवस 2018 की थीम ‘बीट प्लास्टिक प्रदूषण’ थी और भारत को इसकी मेजबानी का अवसर मिला था।

संयुक्त राष्ट्र के मौसम विज्ञान संस्थान की रिपोर्ट के अनुसार अगर कार्बनडाईऑक्साइड और दूसरी ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कटौती नहीं की जाएगी तो पृथ्वी पर मौजूद जीवन पर जलवायु परिवर्तन का असर खतरनाक और अपरिवर्तनीय होगा।

ऐसे में इस बात की चिंता व्यक्त की गई है कि धरती पर बढ़ रहे ओजोन प्रदूषण से 2030 तक फसल की पैदावार में 26 प्रतिशत की कमी हो सकती है।

मौसम विज्ञान संस्थान का ग्रीनहाउस गैस बुलेटिन बताता है कि कार्बनडाईऑक्साइड (CO_2), मीथेन और नाइट्रसऑक्साइड का विश्वव्यापी संकेंद्रण पिछले कुछ वर्षों में लगातार बढ़ा है। इसके अतिरिक्त रिपोर्ट यह भी कहती है कि खतरनाक ग्रीनहाउस गैस और ओजोन परत को नष्ट करने वाला पदार्थ सीएफसी-11 दोबारा उत्सर्जित हो रहा है। इससे ओजोन परत को खतरा है।

जलवायु पर विभिन्न ग्रीनहाउस गैसों के प्रभाव में 1990 से अब तक 41 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है जिसे ‘रेडियोएक्टिव फोर्सिंग’ कहा जाता है। पिछले एक दशक में रेडियोएक्टिव फोर्सिंग में 82 प्रतिशत की बढ़ोतरी कार्बनडाईऑक्साइड के कारण हुई है। पृथ्वी में कार्बनडाईऑक्साइड का इतना संकेंद्रण इससे पहले तीस से चालीस लाख

तपमान बढ़ोतरी के नुकसान

"टर्न डाउन द हीट: क्लाइमेट एक्सट्रीम्स, रीजनल इम्पैक्ट्स एंड केस फॉर रिजिलीयन्स" नामक विश्व बैंक की रिपोर्ट में बताया गया है कि तापमान में 2^0 और 4^0 सेल्सियस की वृद्धि से दक्षिण एशिया, उप-सहारा अफ्रीका और दक्षिण पूर्व एशिया में कृषि उत्पादन, जल संसाधन, तटीय परितंत्र और शहरों पर क्या असर पड़ेगा। इसमें चेतावनी दी गई है कि 2040 के दशक तक, भारत में अत्यधिक गर्मी के कारण फसलों की पैदावार में कमी हो जाएगी। वर्षा स्तर तथा भूजल में बदलाव के कारण पानी की उपलब्धता कम हो जाएगी, जिससे हालात और खराब हो सकते हैं। भूजल संसाधन का स्तर पहले ही चिंताजनक हो चुका है। देश के 15 प्रतिशत से अधिक भूजल का अति दोहन किया जा चुका है।

वर्ष पहले हुआ था जब तापमान दो से तीन डिग्री अधिक गर्म था और समुद्र का स्तर अब से 10 से 20 मीटर ऊंचा था।

एक उदाहरण के रूप में बताया गया है कि साल 2004 में भारत के मैदानी क्षेत्रों में तापमान में अचानक 3 से लेकर 6 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हो गई थी। इसके कारण फसल 10 से 20 दिन पहले ही पक गई थी, जिससे गेहूं के उत्पादन में चार मिलियन टन की गिरावट आई।

वैज्ञानिकों के अनुसार उच्च तापमान या सूखे की स्थिति गेहूं के लिए हानिकारक होती है। गेहूं के पकने के समय $14-15^0$ सेल्सियस के औसत तापमान की आवश्यकता होती है। अनाज बनने और विकास के समय में उचित तापमान की स्थिति उपज के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इस अवधि के दौरान 25^0 सेल्सियस से ऊपर तापमान अनाज का वजन कम कर देता है। अधिक तापमान रहने से गेहूं का पौधा बहुत अधिक ऊर्जा वाष्पीकरण के जरिए व्यर्थ कर देता है और कम पैदावार होती है।

बढ़ते तापमान से उपज घटने का खतरा

कृषि संबंधी स्टैंडिंग कमेटी ने वर्ष 2017 की अपनी रिपोर्ट में बताया कि जलवायु परिवर्तन के कारण गेहूं की फसल पर सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ रहा है। इस रिपोर्ट के अनुसार साल 2050 तक पूरे देश में अधिकतम तापमान 40^0 सेल्सियस और न्यूनतम 2.4^0 सेल्सियस तक बढ़ जाएगा। इसके कारण मानसून के महीनों में कमी आ जाएगी और बारिश कम होगी।

बढ़ते वायु प्रदूषण के कारण अगले एक दशक में औसत तापमान में 2^0 सेल्सियस की वृद्धि की आशंका भारत के ग्रीष्मकालीन मानसून के पूर्वानुमान को अत्यधिक मुश्किल बना देगी। यह जानकारी विश्व बैंक की रिपोर्ट में दी गई है।

भारत में 60 प्रतिशत से अधिक फसल क्षेत्र वर्षा सिंचित है, जो इसे बारिश के स्वरूप में जलवायु प्रेरित बदलाव के प्रति ज्यादा संवेदनशील बनाते हैं। अनुमान है कि 2050 तक औद्योगिकीकरण, और पूर्व तापमान की तुलना में 2^0 से 2.5^0 सेल्सियस की वृद्धि से सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र के नदी थालों में कृषि उत्पादन के लिए पानी और कम हो जाएगा।

विश्व बैंक के लिए यह रिपोर्ट पोट्सडैम इन्स्टीट्यूट फॉर क्लाइमेट इम्पैक्ट रिसर्च एंड क्लाइमेट एनालिटिक्स ने तैयार की है और दुनिया भर के 25 वैज्ञानिकों ने इसकी समीक्षा की है। रिपोर्ट में कहा गया है कि यदि दुनिया का तापमान 2090 तक औसतन 4^0 सेल्सियस बढ़ा तो दक्षिण एशिया के लिए इसके परिणाम और बुरे होंगे। यदि दक्षिण एशिया में कार्बन उत्सर्जन को सीमित करने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की गई तो इस परिदृश्य में, दक्षिण एशिया में भयंकर सूखे और बाढ़, समुद्र का जल स्तर बढ़ने, ग्लेशियर पिघलने और खाद्य उत्पादन में गिरावट जैसी समस्याएं बढ़ सकती हैं।

जलवायु परिवर्तन के सबसे बुरे असर से अब भी बचा जा सकता है यदि गर्माहट में वृद्धि को 2^0 से कम रखा जाए, लेकिन इसके अवसर कम हो रहे हैं। रिपोर्ट के अनुसार जलवायु अनुकूल खेती, बाढ़ और सूखे से रक्षा, ऊष्मा प्रतिरोधी फसलों, भूजल प्रबंधन में सुधार, तटीय बुनियादी ढांचे को बेहतर बनाने और मानव स्वास्थ्य में सुधार के जरिए तत्काल कार्रवाई करने की आवश्यकता है।

दिनोंदिन बढ़ रहा तापमान

विश्व बैंक की रिपोर्ट में वैज्ञानिकों ने बताया है कि जलवायु परिवर्तन से बचने के लिए जलवायु के अनुकूल खेती की पद्धति अपनाएं तथा ऊर्जा दक्षता और अक्षय उर्जा की उपलब्धि में बढ़ोतरी के लिए नवीन तरीकों की खोज करें।

इस रिपोर्ट के अनुसार 2040 तक पृथ्वी के तापमान में 2^0 सेल्सियस तक वृद्धि से दक्षिण एशिया में फसल उत्पादन कम से कम 12 प्रतिशत कम हो सकता है। इसके लिए प्रति व्यक्ति मांग पूरी करने के लिए आयात को जलवायु परिवर्तन के पहले की तुलना में दोगुना करना पड़ेगा। भोजन की उपलब्धता घटने से स्वास्थ्य समस्याएं भी बढ़ जाएंगी, जिनमें बच्चों में बौनापन होना शामिल है। जलवायु परिवर्तन से पहले की स्थिति की तुलना में 2050 तक बच्चों में बौनापन होने की प्रक्रिया 35 प्रतिशत बढ़ सकती है।

भारत सरकार द्वारा विश्व बैंक के सहयोग से जलवायु परिवर्तन के वर्तमान तापमान वृद्धि के रुझानों के असर से बचने की क्षमता बढ़ाने के लिए प्रयास किया जा रहा है। कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड में विश्व बैंक की सहायता से चलाई जा रही परियोजनाओं से स्थानीय समुदायों को अपने जल क्षेत्रों के बेहतर संरक्षण में मदद मिल रही है। इससे खेती के लिए पानी की उपलब्धता बढ़ने और अधिक आय देने वाली फसलों को उगाने में किसानों की मदद, अल्प जल संसाधनों के कुशल इस्तेमाल और कृषि व्यवसाय स्थापित करने में समुदायों को मिल रही है।

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन सहित विश्व बैंक समर्थित ग्रामीण आजीविका परियोजनाओं से भी जल संरक्षण और दक्षता, भूमि संरक्षण की पद्धतियों इत्यादि के एकीकरण में मदद मिल रही है। ■

(स्रोतः संयुक्त राष्ट्र की वेबसाइट, भाकृअनुप-भारतीय गेहूं और जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल की वेबसाइट और विश्व बैंक की वेबसाइट)

जलवायु परिवर्तन में उपयोगी है कूंड एवं नाली विधि से बुआई

आर.के. सिंह[1] और **वीणापाणि श्रीवास्तव**[2]

"परंपरागत तरीके से बुआई करने पर फसल को 25-30 प्रतिशत अधिक जल की आवश्यकता होती है। वर्षा ऋतु वाली फसल में अधिक जल भराव से क्षति होती है। इस पद्धति में बुआई करने और मृदा को भुरभुरा बनाने के लिए बार-बार जुताई एवं बक्खर चलाना पड़ता है। इससे अतिरिक्त ऊर्जा एवं धन खर्च होता है। ऐसी परिस्थिति में कूंड एवं नाली विधि से बुआई करने पर उपज में 20-25 प्रतिशत तक वृद्धि होती है। इस पद्धति में खरपतवार एवं कीट का प्रकोप कम होता है तथा धन एवं ऊर्जा की बचत होती है। इससे अतिरिक्त वर्षा जल का एकत्रीकरण एवं संरक्षण अधिक होता है। इसका उपयोग जल अभाव की स्थिति में किया जा सकता है। इसके फलस्वरूप पौध विकास एवं उपज में वृद्धि संभव है। इस प्रकार कृषक बदलती जलवायु में उत्पादन लागत कम करके अत्यधिक लाभ कमा सकते हैं।"

वर्षा के दौरान विभिन्न स्थानों पर जलवायु एवं भौगोलिक परिस्थितियां भी भिन्न होती हैं। पिछले दशक से यह देखा जा रहा है कि जलवायु परिवर्तन से अनिश्चितता काफी बढ़ गयी है। उदाहरण के लिए कहीं पर वर्षा का ज्यादा हो जाना या बहुत कम हो जाना एवं तापमान का अचानक बढ़ जाना इत्यादि। जलवायु परिवर्तन से वर्षा ऋतु की फसल सोयाबीन, उड़द, मूंग, अरहर एवं मक्का का उत्पादन काफी प्रभावित हो रहा है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में जलभराव से या कम वर्षा वाले क्षेत्रों में आवश्यक जल की कमी से फसल का नुकसान हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में यदि कृषक फसल बुआई की विधि में परिवर्तन कर फसल की बुआई कूंड एवं नाली विधि से करें तो ज्यादा लाभकारी होगा। कूंड एवं नाली मशीन का विकास धान एवं गेहूं पद्धति के लिए किया गया तथा इसका प्रयोग सर्वप्रथम योगी वैली, मैक्सिको में किया गया। इन स्थानों पर धान-गेहूं की बहुलता प्रचलित है। यह विधि वहां के लिए वरदान साबित हो रही थी। इसी के आधार पर स्वतंत्रता के पश्चात देश की आर्थिक निर्भरता के लिए कृषि पर विशेष ध्यान दिया गया।

कृषि के बहुत से आवश्यक संसाधनों का इस क्रम में युद्धस्तर पर विकास किया गया। इसके साथ ही समय-समय पर कृषि कार्यों के लिए विभिन्न प्रकार के यंत्रों को विकसित किया जा रहा है। देश की मिट्टी एवं जलवायु विविधता बाध्य करती है नये नये कृषि यंत्रों के प्रयोग करने के लिए। वैज्ञानिकों का प्रयत्न ऐसे यंत्र बनाने में रहा है, जिससे कार्यक्षमता बढ़े तथा लागत एवं ऊर्जा खपत कम हो। इसी संदर्भ में ट्रैक्टरचालित कूंड एवं नाली विधि का विकास किया गया। भारत में इस यंत्र से बुआई सर्वप्रथम 1991 में धान-गेहूं की फसल पद्धति की बहुलता वाले गंगा नदी के मैदानी क्षेत्रों में की गई। यह विधि काफी प्रचलित हुई और धीरे-धीरे अन्य फसल पद्धतियों में भी इसका विस्तार हुआ। इसी प्रकार यह विधि मध्य प्रदेश में उन क्षेत्रों में काफी प्रचलित हो रही है, जहां पर खरीफ मौसम में मध्यम से भारी मृदा में सोयाबीन, उड़द, मूंग एवं अरहर उगायी जा रही है। इस यंत्र से बुआई करने पर फसल की बुआई कूंड पर होती है। इससे फसल का अति वर्षा की स्थिति में भी नुकसान नहीं होता है। यह यंत्र बुआई करते समय 2-3 कूंड बनाता है। उसके ऊपर यह प्रत्येक कूंड पर दो लाइन में बुआई करता है। इस यंत्र के प्रयोग से ऊर्जा एवं समय की बचत होती है। देश के विभिन्न अनुसंधान संस्थानों एवं कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा प्रमाणित हो चुका है कि इस विधि से बुआई करने पर कम समय एवं लागत पर अत्यधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार इस यंत्र का प्रयोग कैमूर पठार एवं सतपुड़ा पहाड़ी क्षेत्र के अंतर्गत जिला पन्ना (मध्य प्रदेश) में सोयाबीन फसल की बुआई के लिए प्रयोग किया जा रहा है। इसके सार्थक परिणाम परिलक्षित हो रहे हैं। इसी आधार पर, यंत्र से खरीफ फसल की बुआई के लिए अनुशंसा की जाती है।

क्यों आवश्यक है यह विधि

जलवायु परिवर्तन और वर्षा में अनिश्चितता होने से वर्षा ऋतु में सोयाबीन की बुआई में बाधा उत्पन्न होती है। इसलिए पूरे बुन्देलखंड क्षेत्र में खरीफ ऋतु में फसल का रकबा, रबी ऋतु की अपेक्षा बहुत कम होता है। खरीफ ऋतु की मुख्य फसलों

[1]वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान) तथा [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख, कृषि विज्ञान केन्द्र, छतरपुर, जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)

सोयाबीन, उड़द एवं अरहर की उत्पादकता स्थिर हो गई या गिरती जा रही है। ऐसी परिस्थिति में कूंड एवं नाली विधि से बुआई करने पर फसल का बीज बिल्कुल कूंड के ऊपर गिरता है। कम वर्षा की स्थिति में बने कूंड में मृदा में नमी बनी रहती है, जिसके कारण पर्याप्त मात्रा में अंकुरण होता है। अत्यधिक वर्षा की स्थिति में अधिक पानी कूंड के साथ बनी नाली द्वारा निष्कासित हो जाता है, जिसमें उक्त फसल का अंकुरण, वृद्धि एवं विकास पर्याप्त मात्रा में होता है। परंपरागत विधि से बुआई करने पर वर्षा की अनिश्चितता में अचानक कम वर्षा का होना या अत्यधिक वर्षा के कारण अंकुरित हो रही फसल की वृद्धि एवं विकास प्रभावित होता है। फसल कमजोर हो जाती है और उत्पादन प्रभावित होता है। ऐसी परिस्थिति में इस विधि से बुआई करने पर फसल बच जाती है और अत्यधिक उत्पादन देती है।

खरपतवार प्रबंधन

सोयाबीन की फसल में कूंड एवं नाली विधि और परंपरागत विधि (छिटकवां/लाइन) से बुआई का तुलनात्मक अध्ययन कर देखा गया कि इस विधि से बुआई वाले प्रक्षेत्र में खरपतवार का प्रकोप बहुत कम हुआ। इसका मुख्य कारण है कूंड का बनना। इससे मृदा सतह पर पड़े खरपतवार के बीज नीचे चले जाते हैं। इसके कारण उनके अंकुरण प्रतिशत में कमी आती है। खरपतवार के वही बीज अंकुरित होते हैं, जो जमीन की सतह पर 1-1.5 सें.मी. गहराई पर पड़े रहते हैं और सूर्य के प्रकाश के संपर्क में आते हैं। इसके कारण इस विधि से बुआई करने से खरपतवार का प्रकोप कम होता है।

पौधों की बुआई

सोयाबीन की कूंड एवं नाली विधि से बुआई

कूंड एवं नाली विधि से बुआई का लाभ

परंपरागत विधि से बुआई करने और पर्याप्त वर्षा नहीं होने पर मृदा नमी के अभाव एवं अत्यधिक वर्षा की स्थिति में जलभराव के कारण बीज की अंकुरण क्षमता प्रभावित होती है। यदि अंकुरण पश्चात अत्यधिक वर्षा होती है तब जलभराव की स्थिति में फसल के जड़ क्षेत्र में ऑक्सीजन का अभाव होता है। इससे फसल पीली पड़ जाती है और उसकी वृद्धि एवं विकास रुक जाता है। ऐसी परिस्थिति में यदि वर्षा ऋतु की फसल सोयाबीन, उड़द एवं मूंग की बुआई कूंड एवं नाली विधि से करते हैं तो बीज हमेशा कूंड पर रहता है। इससे अंकुरण अच्छा होता है और उसके जड़ क्षेत्र के पास की मृदा भुरभुरी रहती है, क्योंकि जल भराव नहीं होता है। इसी प्रकार कम वर्षा की स्थिति में वर्षा जल का संरक्षण नाली में कर देते हैं और अत्यधिक वर्षा की स्थिति में पानी का निष्कासन कूंड निर्मित नाली से होता रहता है और आवश्यकतानुसार जल फसल के जड़ क्षेत्र में संरक्षित रहता है। इस प्रकार फसल अपने जीवन चक्र में पर्याप्त ऑक्सीजन लेती रहती है। ऐसे में फसल की वानस्पतिक वृद्धि एवं विकास पर्याप्त मात्रा में होती है। मृदा के छोटे-छोटे कण आपस में संघटित होकर जड़ क्षेत्र के पास-पास रहते हैं और पर्याप्त ऑक्सीजन की उपस्थिति में जड़ क्षेत्र में नॉड्यूल्स की संख्या में वृद्धि होती है, जिससे नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता बढ़ती है। इसकी जड़ों में पाए जाने वाले बैक्टीरिया जीवाणु एरोबिक होते हैं, जिन्हें अपनी क्रिया करने के लिए पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन चाहिए। इसकी पूर्ति कूंड में लगाई गई फसल में पर्याप्त मात्रा में होती रहती है। पर्याप्त ऑक्सीजन व निश्चित तापमान बरकरार रहने से मृदा में पड़े पोषक तत्वों का खनिजीकरण आसानी से होता है और पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ जाती है। उसका समुचित उपयोग होने से फसल की वृद्धि एवं विकास अत्यधिक होता है। इससे फसल की उत्पादकता में 20-25 प्रतिशत तक बढ़ोतरी संभव है। इस प्रकार इस विधि से बुआई करने पर अधिक दिनों तक नमी संरक्षित रहती है। इसका उपयोग फसल अपनी आवश्यकतानुसार करती रहती है।

कीट प्रबंधन

अधिकतम कीट अपना जीवनचक्र जमीन की उपरी सतह पर पूरा करते हैं। कूंड एवं नाली विधि से बुआई करने पर मृदा का ढेर लग जाता है। अधिकाशत: कीट के अंडे जमीन में काफी गहरे स्थान में चले जाते हैं। इससे वे नष्ट हो जाते हैं। इसके कारण उक्त विधि से बुआई करने पर कीट का प्रकोप कम होता है।

अधिक आय

इस विधि से बुआई करने पर कम लागत में अधिक लाभ पाया जा सकता है। इस विधि से बुआई करने के लिए बार-बार खेत को जोतना नहीं पड़ता है। कूंड भी हमेशा भुरभुरा बना रहता है। इसके फलस्वरूप निराई-गुड़ाई की आवश्यकता नहीं पड़ती और पौधों की वानस्पतिक और प्रजनक वृद्धि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से होती रहती है। इससे फसल उत्पादन में वृद्धि होती है, जो आर्थिक रूप से लाभदायक है।

जलवायु परिवर्तन के कृषि प्रभाव को कम करने में उपयोगी पारंपरिक ज्ञान

रणबीर सिंह राणा, मुनीश, रानू पठानिया, शिवानी ठाकुर और **उषा राणा**
भौगोलिक सूचना अनुसंधान एवं प्रशिक्षण केन्द्र, चौ.स.कु. हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर (हिमाचल प्रदेश)

"धान के रोगों व कीटों की रोकथाम के लिए रामबन, बना के पत्ते और अंखरे की पत्तियों का प्रयोग प्राचीन समय से किया जाता है। गाय के मूत्र में खरीफ फसल के बीजों को भिगोकर बीजाई करने जैसी प्रथाओं का प्रचलन है। लेंटाना, काली बसुट्टी और सफेदा के पौधों का उपयोग, आलू के भंडारण में आलू कंद को कीट से बचाने के लिए करते हैं। बंगरु (जंगली पुदीना), काली बसुट्टी के सूखे पत्तों का सफेदा और अखरोट के पत्तों के साथ उपयोग, चीड़ की लकड़ी के टुकड़े (जुगनू) आदि का प्रयोग गेहूं और दूसरे अनाज भंडारण में कीटों से बचाव के लिए करते हैं। स्वदेसी तकनीकी ज्ञान (आईटीके) को किसानों के साथ उत्तर-पश्चिम हिमालय में हिमाचल प्रदेश के आठ पहाड़ी जिलों के किसानों से सत्यापित किया गया है। आईटीके का प्रयोग महंगे रसायन/कीटनाशकों की तुलना में उत्कृष्ट विकल्प है और यह एकीकृत कीट प्रबंधन का एक मुख्य घटक माना जाता है। अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि पहाड़ों के किसानों को आईटीके और जलवायु संबंधी प्रथाओं के बारे में जानकारी है। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने एवं जागरूकता फैलाने के लिए कृषि गतिविधियों में आईटीके का उपयोग करना आज के समय की मांग है।"

पारंपरिक कृषि में रासायनिक उर्वरकों, कृषि रसायनों और सिंचाई के आधुनिक तरीकों के उपयोग के साथ आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकियों की शुरूआत ने जलवायु प्रदूषण और भूमि क्षरण को जन्म दिया है। भारत सहित कई देशों में कीट नियंत्रण और फसल संरक्षण के लिए प्राकृतिक तरीकों को महत्व किया जाता है। इस प्रकार का परंपरागत ज्ञान परीक्षणों, त्रुटियों और विभिन्न क्षेत्रों के स्वदेसी ज्ञान के अनुभवों और सदियों से अनौपचारिक प्रयोग के माध्यम से निरंतर सुधार और स्थानीय संस्कृति एवं पर्यावरण के अनुकूल होने के माध्यम से विकसित हुआ है। आधुनिक कृषि में रसायन नियंत्रण विधियां शीघ्र समाधान प्रदान करने के लिए अधिक लोकप्रिय हो हो गई हैं। सच्चाई यह है कि ये न तो टिकाऊ हैं और न ही पर्यावरण के अनुकूल हैं। स्वदेसी तकनीकी ज्ञान (आईटीके), पूर्व-ऐतिहासिक, ऐतिहासिक और वैदिक काल से प्राचीन प्रथाओं में विद्यमान अद्वितीय परंपरागत स्थानीय ज्ञान को संदर्भित करता है। स्वदेसी टेक्नोलॉजी ज्ञान (आईटीके) में व्यापक विषयों की सूची है। इस सूची में फसल उत्पादन, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन,

खाद्य तैयारी, स्वास्थ्य देखभाल, कीट प्रबंधन और कई अन्य संबंधित विषय शामिल हैं। कृषि में अनाज का सुरक्षित भंडारण चिंता का विषय है। किसानों को कई प्रकार के कीटों से अपने अनाज की रक्षा के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती है।

हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय किसानों ने स्वदेसी भंडारण तकनीकों का खूब प्रयोग किया है। इसमें उत्कृष्ट भंडारण संरचनाएं, कृषि प्रबंधन, फसल संरक्षण और में जलवायु प्रतिरोधी प्रथाओं का इस्तेमाल किया गया है।

हिमाचल प्रदेश के आठ जिलों (कांगड़ा, लाहौल एवं स्पीति, ऊना, हमीरपुर, चंबा, मंडी और किन्नौर) में आईटीके का उपयोग करने वाले किसानों पर आधारित भिन्न-भिन्न क्षेत्र में सर्वेक्षण किया है। आंकड़ों का संग्रहण विभिन्न अवधियों और कृषि-जलवायु क्षेत्रों में वर्ष 2010-2015 में किया गया। इन आठ जिलों के किसानों के परिवारों को जलवायु परिवर्तन के बारे में कृषि गतिविधियों में आईटीके और जलवायु अनुकूल प्रथाओं से अवगत करवाया और फिर किसानों का समूह बनाकर सर्वेक्षण किया गया। यह अध्ययन कृषि रोगों/कीटों के नियंत्रण, अनाज भंडारण, कीटनाशक प्रबंधन से संबंधित किसानों पर किया गया। कृषि प्रबंधन में किसानों द्वारा आमतौर पर इस्तेमाल की जाने वाली जलवायु अनुकूल पद्धतियों का उल्लेख इस प्रकार है:

कीट और कीट रोग नियंत्रण

धान में हिस्पा, ब्लास्ट, पत्ता छेदक आदि कीटों के बचाव के लिए किसान, रामबाण (एक थूहर का पौधा) के पत्तों से प्राप्त दूध जैसे पदार्थ को पीसकर खेत में प्रयोग कर उपचार करते हैं। वैज्ञानिकों ने पाया है कि इस पौधे में कीटनाशक गुण होते हैं। यह तकनीक हिस्पा आने से पहले ही कारगर सिद्ध होती है। कई क्षेत्रों में अंखरे, जो कि एक थूहर (कैक्ट्स) परिवार का पौधा है, का प्रयोग धान में कीटों से बचाव के लिए किया जाता है। वैज्ञानिक शोध से पता चला है फ्लेवोनोइड, सपोनिंस और फेनोलिक यौगिकों की मात्रा होने से ये पौधे उपयोगी हैं। गुजरात में किसान आक के पौधे के पत्तों और टहनियों को धान, सरसों और अदरक में कीटों से बचाव जैस एफिड, दीमक, कैटरपिलर और ब्राउन हॉपर को नियंत्रित करने के लिए करते हैं। पौधे में क्षारीय गुण होने की वजह से यह विकर्षण का काम करता है। इसी तरह गोभी में कीटनाशक के

अगेव अमेरिकाना (रामबन)

यूफोरबिया एंटिकोरम (अंकर)

अनाज भंडारण के स्थानीय तरीके

अनाज का बांस से बने ड्रम आकार के बर्तन, जिसे गाय के गोबर से लेपकर रखा जाता है, में भंडारण करते हैं। यहां पर अनाज अधिक समय तक सुरक्षित रहता है। ऐसी प्रथाएं हिमाचल के किसानों में देखने को मिलती हैं तथा ऐसा अनाज भंडारण आंध्र प्रदेश के किसान भी करते हैं। वहां पर वे धान भूसे से ऐसी संरचना बनाते हैं, जिसमें धान बीज भंडारण का संग्रहण भी किया जा सके और बिना किसी दवाई से यह सुरक्षित भंडारण होता है।

आलू के भंडारण के लिए किसान गांवा में लैंटाना के पत्ते व टहनियों, वसुंटी और सफेदे के वृक्षों की छाल का इस्तेमाल करते हैं। इसमें पौधे की टहनियां, पत्तों सहित फैलाई जाती हैं और जिसके ऊपर आलू का भंडारण किया जाता है। इन पौधों में जीवाणुरोधी फंगसरोधी एंटी फंगल और जीवाणुरोधी एंटी बैक्टीरियल गुण होता है, जो कि आलू के क्यूबर कीट के लिए उपयुक्त तरीका है। कुछ किसान अनाज भंडारण में माचिस की तीलियों में उपस्थित फॉस्फोरस, जिससे फॉस्फीन निकलती है, का प्रयोग कीटों आदि से निजात पाने के लिए करते हैं। गेहूं के भंडारण में जंगली पुदीने के पत्ते, काली वंसुटी के सूखे पत्ते और सफेद पत्ते डालने की भी प्रक्रिया प्रचलित है। कई उत्तरी-पूर्वी क्षेत्रों में नीम और आम के सूखे पत्तों को भंडारण के बरतन में डालने से कीट व चूहों से बचाव किया जाता है। इसी तरह दाल के सही भंडारण के लिए दालों को सुखाते समय हल्का सरसों का तेल छिड़ककर और धूप में सुखाकर भंडारण करने से कीट नहीं लगते हैं। कुछ पहाड़ी क्षेत्रों जैसे कुल्लू आदि में किसान अखरोट के पत्तों और जूगनू की लकड़ी के टुकड़ों को बर्तन के बीच रखते हैं, जिससे बीज संरक्षण सही होता है। अखरोट के पत्तों में माइक्रोबियलरोधी और फंगल प्रतिरोधी गुण होते हैं। इससे बीज संरक्षण सही होता है।

विटेक्स नेगुंडो (बाना)

लेंटाना कैमारा (फुलनू)

यूपेटोरियम एडेनोफोरा (काली बसूती)

नीलगिरी साइट्रोडोरा (सफेदा)

आलू भंडारण में लैंटाना, ईपेटोरियम और युकेलिप्टस का उपयोग

किसानों में आलू कंद के संक्रमण के नियंत्रण के लिए आलू के ढेर में लैंटाना, ईपेटोरियम और सफेदा की पत्तियों और टहनियां को फैलाने की प्रथा है। यह इस तथ्य के कारण है, क्योंकि इन पौधों में जीवाणुरोधी, फंगसरोधी और जीवाणुरोधी, एंटीबायोटिक गुण होते हैं। यह अभ्यास आलू की कटाई के तुरंत बाद किया जाता है। आलू कंद के ऊपर 2-5 सें.मी. पतली रेत की सतह लगाने से भंडारित आलू पर कंद पतंग का नियंत्रण होता है। कांगड़ा के किसान गेहूं और चावल में कीट जैसे बीटल, वेइविल और लेपिडोपरस कैटरपिलर को नियंत्रित करने के लिए माचिस की तीलियों को भंडारण संयंत्र में रखते हैं। फॉस्फोरस में उपस्थिति, गैस (फोसिन) संभवतया कीटों को मार देती है। बंग्रू या जंगली पुदीना, काली बसुती के सूखे पत्ते और सफेदा के पत्तों को अनाज के बर्तन में रखने से भी कीटों की रोकथाम होती है। इसमें रोगाणुरोधी, जीवाणुरोधी, एंटीफंगल और कीटनाशक गुण होते हैं। इससे भंडारित गेहूं की रक्षा होती है। इसी प्रकार, रोगों और कीटों से बीजों की रक्षा के लिए आर्टेमिसिया, नीम और भांग की ताजा/सूखी पत्तियों और शाखाओं का प्रयोग होता है। झाड़ी की असहनीय गंध के कारण कीट और चूहे दूर रहते हैं।

लिए लकड़ी की राख और गाय का गोबर उपयोगी होता है।

धान में कीटों का हमला पहले से होने पर उपरोक्त विधियां उपयोगी हैं। इसके अलावा कद्दू,प्याज,बैंगन, टमाटर और लहसुन में अधिकतर किसान, कीटों जैसे कि लाल कद्दू थ्रिप्स और एफिड से बचाव के लिए चूल्हे की राख का पौधों के ऊपर प्रयोग करते हैं। इस विधि का प्रयोप छोटे पैमाने पर विशेष रूप से रसोई बागवानी में सब्जी की खेती में ही उपयोगी है। यह किसानों के लिए पर्यावरण अनुकूल ही नहीं बल्कि सस्ती, बहुत प्रभावी और आसानी से उपलब्ध है। राख का प्रयोग सुबह-सुबह किया जाता है। मूल रूप से राख कैटरपिलर, चेंपा या एफिड और भृंग आदि की सतह से पानी अवशोषित करती है और फिर शुष्क कर मार देती है। सांस या श्वसन नाकाबंदी के कारण इन कीटों की मृत्यु हो जाती है। राख छोटे-छोटे कीटों में प्रजनन निवारक के रूप में ये कार्य करती है। चबाने और चूसने वाले कीटों को राख की वजह से पौधों को चबाना कठिन हो जाता है। किसानों के बीच किए गए सर्वेक्षण से संकेत मिलता है कि चूल्हे की राख का इस्तेमाल प्रदेश में अधिकतर किया जाता है। इस प्रथा से किसानों के अनुसार पौधों के प्रकाश संरक्षण क्षेत्र में कमी आती है। हालांकि राख पत्तों से चिपक जाती है और पैदावार कम होने की आशंका जताई जाती है।

बंना नामक पौधा, जिसे स्थानीय भाषा में बणाया निर्गुन्डी भी कहा जाता है, का प्रयोग पौधों के फफूंदीय, जीवाणु संबंधी फंगल बैक्टीरिया और माइक्रोबियल रोगों के लिए के बचाव में किया जाता है। इन पौधों का उपयोग मनुष्य और जानवरों के रोगों के इलाज में भी किया जाता है। धान के स्वस्थ और अच्छे अंकुरण के लिए धान के खेतों के किनारे बाणे की शाखाएं लगाई जाती हैं। बाणे की शाखाओं के झाड़ू से धान के खेतों को साफ किया जाता है। यह एक कीटनाशक के रूप में कार्य करता है। इसमें पॉली-फेनोल, टॉपोनॉइड, ग्लाइकोराइड, इरोइडड, स्टेरॉयड और क्षाराभ एल्केलॉइड होते हैं। इसी तरह का स्वदेसी तकनीकी का कीटों के नियंत्रण के लिए असोम के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में भी गाय के गोबर को पानी में मिलाकर धान के खेतों में छिड़का जाता है। धान में पीले तनाछेदक की रोकथाम के लिए नीम के बीज और पत्तियों का काढ़ा छिड़का जाता है तथा खट्टे के छिलके खेतों में डाले जाते हैं। रस्सी को मिट्टी के तेल में डुबोकर धान के खेतों में रुके पानी में हिलाते रहने या डुबोने से गाय के गोबर को खेतों में छिड़कने से कम कीट आते हैं। असोम के कुछ क्षेत्रों में धान पत्ता लपेटक कीट एवं पीला तनाछेदक के नियंत्रण के लिए बरास या फुटुका के कटे पत्ते और सेजन की छाल और फर्न की शाखाओं का प्रयोग किया किया जाता है, क्योंकि इसमें कीटनाशक तत्व होते हैं।

बीज से उत्पन्न रोगों की सुरक्षा

आमतौर पर ग्रामीण इलाकों में इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है। हिमाचल में बरसात की फसलों की बुआई अगर देरी से होती है, तब शुष्क मिट्टी में बीजाई करने से पहले बीजों का उपचार गौमूत्र से करते हैं, ताकि शुष्क मिट्टी में कीटों से बचाया जा सके। यह क्रिया तब काम में लाई जाती है, जब पूर्व मानसून वर्षा की बौछारें कम होती हैं। गौमूत्र में एंटीबायोटिक दवाओं के गुण होने से यह बीज की सतह पर जम जाते हैं। इससे बीजों को कीट नहीं खाते हैं। इसलिए जब बारिश होती है तब अंकुरण अधिक होता है। शिमला क्षेत्र के किसान धान और गेहूं की फसल में कीटों के नियंत्रण के लिए गौमूत्र और हींग का मिश्रण भी प्रयोग में लाते हैं। इसी प्रकार की जानकारी उत्तराखंड के हिमालय क्षेत्रों के स्थानीय किसानों से भी प्राप्त हुई है, जो कि बीज संरक्षण के लिए राख, गाय का गोबर और गौमूत्र का प्रयोग

मेंथा अर्वेन्सिस (बंगरू)

सेंजना (संजना)

सेलाजिनेला एसपी

अधतोदा वासिका (बसुन्ती)

करते हैं। इसी तरह के अध्ययन से संकेत मिलता है कि ठेओग, शिमला, हिमाचल प्रदेश के किसान, धान और गेहूं के रोगों और कीटों के लिए गौमूत्र, निरगुंडी और हींग का मिश्रण का उपयोग करते हैं। यह कीट को नियंत्रित करने में आसान होने के साथ फसल उत्पादकता में वृद्धि और सभी मौसम में उपयोग के लिए लाभदायक है।

अनाज और बीज का संग्रहण

कुल्लू जिले के उच्च पहाड़ों के किसान अखरोट के पत्तों और रालयुक्त लकड़ी (जुगनू) के टुकड़ों और लकड़ी की राख को उस बर्तन में रखते हैं जिसमें बीज भंडारण किया जाता है। इन पौधों का उपयोग घुन के हमले को भी कम कर देते हैं। अखरोट के पत्तों में रोगाणुरोधी और फंगसरोधी गुण होते हैं। इसी प्रकार उत्तराखंड के किसान बीज संरक्षण और भंडारण के लिए गाय का गोबर या लकड़ी की राख को बाख, आड़ू, नीम, तीमूर, अखरोट, हल्दी, नीबू के पत्तों, केरोसिन तेल और चूने के पाउडर के साथ करते हैं। दालों के बीज संरक्षण और बीज भंडारण के लिए लकड़ी राख, गाय गोबर की राख, साबुन, अखरोट, नीम के पत्तों, पोंगम की पत्तियों को भंडारण पात्र में रखते हैं। यह मिश्रण कीट से बचाव में काम करता है। सुरक्षित भंडारण के लिए बीज की नमी को कम करने के लिए अनाज को सुखाने की जरूरत होती है। करी पत्तियों और बेर की शाखा को अनाज भंडारण में फैलाए जाने से कीटों से बचाव होता है। इन पत्तियों की गंध अनाज के कीटों को हटा देती है। इसी प्रकार पंजाब में गेहूं के भंडारण के लिए आक और नीम की पत्तियों का इस्तेमाल किया जाता है। ■

जलवायु परिवर्तन से चरागाह घटने की आशंका

भारत में औसत तापमान में वृद्धि होने से फसलों के साथ पशुओं के चरागाह पर भी असर पड़ रहा है। जर्मनी के बॉन शहर में नवंबर 2017 में हुए 23वें जलवायु सम्मेलन इस बात पर चिंता व्यक्त की गई थी कि वर्ष 2020 तक दक्षिण एशिया के देशों खासकर भारत में तापमान में हो रही बढ़ोतरी से पशु और चरागाह पर गंभीर प्रभाव पड़ेगा। भाकृअनुप-भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झांसी की रिपोर्ट के अनुसार देश में 160 मिलियन टन दूध उत्पादन के लिए वर्ष 2020 तक 494 मिलियन टन सूखे चारे, 825 मिलियन टन हरे चारे और 54 मिलियन टन पशु खाद्य पदार्थों की जरूरत पड़ेगी, वर्तमान में देश में मात्र 4 प्रतिशत जमीन से ही चारा उगाया जा रहा है। देश में चरागाह दिनों-दिन कम होते जा रहे हैं। आज देश में 40 प्रतिशत चारे की कमी है।

सितंबर 2014 में जारी की गई 19वीं पशुगणना में भी यह बताया गया था कि देश में चरागाह और चारे की कमी की वजह से पशुओं की आबादी पर असर पड़ रह है। देश में 1950-51 में जहां चरागाह का क्षेत्रफल 66.9 मिलियन हैक्टर था वहीं अब यह घटकर मात्र 37.42 मिलियन हैक्टर रह गया है। भारत की पशुधन संख्या अत्यंत विशाल है। देश का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल विश्व के संपूर्ण भू-भाग का मात्र 2 प्रतिशत है, जबकि यहां पशुओं की संख्या विश्व की संख्या का 15 प्रतिशत है। देश में पशुओं की संख्या 450 मिलियन के लगभग है, जिसमें प्रतिवर्ष 10 लाख पशु की दर से बढ़ोतरी हो रही है।

प्रारंभ से ही पशुधन का हमारे देश की अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भारत में पशुओं के लिए आवश्यक पौष्टिक आहार की हमेशा से ही कमी रही है। यहां पशु आहार की स्थिति विदेशों से काफी विपरीत है। वर्तमान में देश में लगभग 3.84 प्रतिशत भूमि में चारा उत्पादन का कार्य किया जाता है। दसवीं योजना में चारे की 22 प्रतिशत की कमी आंकी गई थी। हमारे देश की कुल जोत के लगभग 4 प्रतिशत क्षेत्रफल में ही चारा उगाया जाता है, जबकि 12 से 16 प्रतिशत क्षेत्रफल में चारा उगाने की आवश्यकता है।

नेशनल एकेडमी ऑफ एग्रीकल्चर साइंसेस, पूसा, नई दिल्ली ने एक नीतिगत पत्र जारी किया, जिसके अनुसार जलवायु में हुए बदलाव से गर्मी और बरसात में पशुधन की ज्यादातर प्रजातियों की प्रजनन क्षमता प्रभावित होगी। मौसम प्रतिकूल होने पर पशुओं के लिए चारे की बड़ी समस्या पैदा हो जाएगी। अधिक समय तक सूखा रहने या बाढ़ की स्थिति बने रहने से चारा संरक्षित करना भी कठिन हो जाएगा।

देश में चारे की कमी को देखते हुए केंद्र सरकार ने देश में पशु चारा विकास के लिए एक राष्ट्रीय संचालन समिति का गठन किया है। केन्द्र सरकार ने चारा विकास कार्यक्रम उपयोजना के अंतर्गत राष्ट्रीय किसान विकास योजना (आरकेवीवाई) के तहत अलग से 100 करोड़ रुपये का आवंटन किया गया। जिसमें सूखा प्रभावित क्षेत्रों में चारा विकास के लिए प्रति हैक्टर 3,200 रुपए की सहायता दी जा रही है।

पशुओं में चारे की कमी को देखते हुए देश के विभिन्न राज्यों में ग्राम पंचायतों की चरागाह की भूमि को गोचर के क्षेत्र के रूप में विकसित किए जाने के लिए काम भी हो रहा है। देश में पशुओं में चारे की कमी न हो इसको लेकर भाकृअनुप-भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झांसी ने चारा की जलवायु परिवर्तनरोधी प्रजातियों को विकसित किया है। जई, बरसीम, रिजका के साथ ही कई घासों का विकास किया है, जिसमें अंजन घास, धवूल घास, मारवल घास, लंपा घास, सेवन घास और गिनी घास प्रमुख हैं। ■

(स्रोतः भाकृअनुप-भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झांसी और नेशनल एकेडमी ऑफ एग्रीकल्चर साइंसेस, पूसा, नई दिल्ली की वेबसाइट)

अरहर की पत्तियों से मृदा स्वास्थ्य में सुधार

गोरधन गेना, महेशचन्द मीना और अशोक कुमार
मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विज्ञान संभाग
भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012

" भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली ने अरहर की कम अवधि (ईएसडी) वाली किस्मों का विकास किया है। आईजीपी क्षेत्र में धान की जगह अरहर की ये किस्में लगा सकते हैं। एक नई वैज्ञानिक तकनीकी के अंतर्गत अरहर की पत्तियों को खेत में ही गिराकर जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ा सकते हैं। शाकाहारी लोगों के लिए अरहर की दाल से प्रोटीन की पूर्ति की जा सकती है। अरहर की पत्तियों व फलियों के छिलके पशुओं के लिए पौष्टिक चारे के रूप में उपयोग किए जा सकते हैं। यह फसल उगाने से इसकी जड़ों में पाये जाने वाले राइजोबियम जीवाणु, मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि करते हैं। इसके अतिरिक्त अरहर, मृदा क्षरण रोकने व वायु प्रतिरोधक फसल के रूप में भी उपयोगी है। इसे मिश्रित फसलों के रूप में अन्य फसल के साथ उगाकर भी अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है। "

आने वाले वर्षों में कृषि के लिए सबसे बड़ी चुनौती, भूख और कुपोषण से निपटना है। दुर्लभ जल संसाधन, आवर्ती सूखा, घटती कृषि भूमि के साथ बढ़ती आबादी के लिए पर्याप्त भोजन प्रदान करना है। वर्तमान कृषि को उत्पादन उन्मुख से मुनाफे वाली टिकाऊ कृषि में बदलने की आवश्यकता है। भारत में हरित क्रांति से फसल उत्पादन में वृद्धि हुई, लेकिन उर्वरकों की सही मात्रा व अनुपात में उपयोग नहीं करने से मृदा की गुणवत्ता में गिरावट आयी है। हाल ही में मृदा स्वास्थ्य कार्ड के माध्यम से जो मृदा आंकड़े सामने आये हैं, उनमें अधिकांश मृदा में जैविक कार्बन की कमी पायी गयी। यह मृदा स्वास्थ्य के लिये सभी आवश्यक पोषक तत्वों को उपलब्ध करने वाला आधार (स्रोत) माना जाता है। जैविक कार्बन की कमी का मुख्य कारण है लगातार पोषक तत्वों का दोहन किया जाना। किसान जैविक कार्बन की पूर्ति के लिये समान्यत: गोबर की खाद का उपयोग करते हैं, इसकी उपलब्धता में कमी के कारण पर्याप्त खाद उपलब्ध नहीं है। किसान के गोबर की खाद की पूर्ति के लिए अन्य स्रोतों की आवश्यकता है। इंडो-गंगा के मैदानी (आईजीपी) क्षेत्र में एकल फसलचक्र (धान-गेहूं) लेने से मृदा स्वास्थ्य में गिरावट आ रही है। कृषि उत्पादकता को बनाए रखने के लिए संतुलित पोषक तत्वों के प्रबंधन की आवश्यकता है। किसान को एकल फसल प्रणाली में बदलाव के साथ फसलचक्र में दलहन का समावेश करना चाहिए।

मृदा में कार्बन की कमी को पूरा करने में सक्षम अरहर की पत्तियां

अरहर की पत्तियों से खाद बनाने की वैज्ञानिक विधि

भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा नई दिल्ली ने पांच वर्षों तक अरहर की पत्तियों को खेत में गिराकर नया अनुसंधान किया है। खेत में लगभग 1.2 से 1.4 टन प्रति हैक्टर प्रतिवर्ष पत्तियों के अवशेषों को खेत में मिलाया जाता है। इससे खेत में कार्बन की मात्रा में 0.4 से 0.6 प्रतिशत तक बढ़ोतरी पाई गई। अरहर की खेती दोमट या चिकनी दोमट एवं कपास की भारी काली मृदाओं, जिनमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो, में सफलतापूर्वक की जा सकती है। आर्द्र व शुष्क दोनों प्रकार के गर्म जलवायु के क्षेत्रों में अरहर की खेती की जा सकती है। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है, वहां 1 से 15 जून तक फसल की बुआई करनी चाहिए। हाल के वर्षों में अरहर की अतिरिक्त कम अवधि वाली किस्मों का विकास हुआ है। यह (सारणी-1) परंपरागत किस्मों से तीन से चार सप्ताह पहले परिपक्व हो जाती है। इन किस्मों को धान के स्थान पर ले सकते हैं और रबी फसल की भी समय पर बुआई की जा सकती है।

वर्षा आधारित फसल के लिए जुलाई के मध्य तक वर्षा होते ही बुआई कर देते हैं। फसल के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 से 75 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 15 से 20 सें.मी. रखी जानी चाहिए। हल

अरहर के फसल अवशेष से मृदा स्वास्थ्य में सुधार

- अरहर की पत्तियों के लिये उपयोग किये गये पौधों को जब जमीन में हल चलाकर दबाया जाता है तो उनके गलने-सड़ने से जड़ों की गांठों में जमा नाइट्रोजन जैविक रूप में मृदा में पुनः आकर लेकर उसकी-उर्वरा शक्ति को बढ़ाती है।
- अरहर की पत्तियों से मृदा में जैविक कार्बन की मात्रा में बढ़ोतरी होती है। लगभग 40-50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन अगली फसल को प्राप्त होती है।
- मृदा में जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ने से सूक्ष्मजीवाणुओं की गतिविधियां बढ़ती हैं। इससे पोषक तत्वों की उपलब्धता में बढ़ोतरी होती है।
- अरहर की पत्तियों को मृदा में मिलाने से मृदा की भौतिक स्थिति में सुधार होता है और मृदा में जल धारण की क्षमता में वृद्धि होती है।
- मृदा की संरचना में सुधार होने के कारण फसल की जड़ों का फैलाव अच्छा होता है।

के पीछे पोरा लगाकार बुआई करते हैं। ध्यान रहे कि बीज 5 सें.मी. से अधिक गहरा न बोया जाए। लेग्यूमिनेसी कुल की फसल होने से अरहर की फसल में भी नाइट्रोजन की अधिक आवश्यकता नहीं होती। मृदा परीक्षण के आधार पर फॉस्फोरस व पोटाश भी आवश्यकतानुसार दी जानी चाहिए। पौधों के प्रारम्भिक विकास के लिए 18 से 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40 से 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 30 कि.ग्रा पोटाश की जरूरत रहती है। अधिक वर्षा होने पर इस फसल में खरपतवार बहुत तेजी से बढ़ते हैं। बुआई के 20-25 दिनों बाद एक निराई-गुड़ाई, खुरपी की सहायता से करें। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को रासायनिक

प्रोटीन की पूर्ति के लिए अरहर की खेती

जैविक खाद की स्रोत हैं अरहर पत्तियां

सरणी 1. अरहर की कम अवधि वाली उन्नत किस्में

क्र.सं.	उन्नत किस्में	किस्म की गुणवत्ता
1.	पूसा-16	वर्ष 2017 में विकसित यह किस्म 120 दिनों में पकती है। इसकी पैदावार 15 से 20 क्विंटल प्रति हैक्टर है। इस नई किस्म की प्रायोगिक खेती चल रही है।
2.	प्रभात	यह किस्म 115 से 135 दिनों में पकती है। इसकी ऊंचाई 150-170 सें.मी. होती है। उपज 10-12 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है।
3.	आईसीपीए-87 (प्रगति)	यह बौनी किस्म 130 से 140 दिनों में पकती है तथा उकठा रोग प्रतिरोधी है। इसके दाने बड़े व हल्के भूरे रंग के होते हैं। अधिक तापमान व सूखा सहन करने वाली इस किस्म से 18 से 20 क्विटंल प्रति हैक्टर उपज प्राप्त होती है।
4.	यूपीएएस-120	यह किस्म 120 से 125 दिनों में पककर तैयार होती है। हल्के भूरे रंग के बीज वाली इस किस्म के 1000 बीजों का भार 67 ग्राम होता है।
5.	मानक (एच-77-216)	यह किस्म 130-135 दिनों में पकती है। अधिक तापमान व सूखा सहन करने वाली इस किस्म से 18 से 20 क्विटंल प्रति हैक्टर उपज प्राप्त होती है।
6.	लक्ष्मी (आईसीपीएल-85063)	यह किस्म बुआई के 120-130 दिनों में पककर तैयार हो जाती है।
7.	अन्य	पूसा-33, पूसा-855, पूसा-991, पूसा-992, पूसा-2001, पूसा-2002, टाईप-21, शारदा-पारस आदि उपयुक्त किस्में हैं।

सारणी 2. अरहर-गेहूं फसल प्रणाली की उपज, उत्पादकता एवं शुद्ध लाभ

प्रदर्शन प्लॉट	औसतन उपज में वृद्धि (क्विं./है.)		कुल मुनाफा (हजार/हैक्टर)		
	अरहर	गेहूं	अरहर उपज	गेहूं उपज	प्रणाली उत्पादकता
बिना उर्वरक	0.94	2.21	7.6	0.6	8.2
संस्तुत एनपीके	1.44	4.28	13.5	17.2	30.7
केवल खाद	1.15	3.02	3.3	1.6	4.9
एनपीके+खाद	1.79	4.92	11.3	13.5	24.8
एनपीके+पत्तियां खाद	1.50	5.23	13.5	18.9	32.4

किसानों को अधिक लाभ देती हैं कम समय में तैयार होने वाली अरहर प्रजातियां

विधि से नष्ट करने के लिए पेन्डीमिथाइलिन 30 ई.सी. की 1.5 लीटर मात्रा को 800 लीटर पानी में मिलाकर बुआई के तुरन्त बाद व अंकुरण से पहले प्रति हैक्टर छिड़काव करना चाहिए। फ्लूक्लोरेलिन (बेसालिन) की 1 कि.ग्रा मात्रा बुआई से पूर्व प्रति हैक्टर मृदा में भलीभांति मिलानी चाहिए।

अरहर परिपक्वता के समय अर्थात जब पौधे की सभी फलियों में दाने भर जाएं और पत्तियां हल्की पीली हो जाएं तो 10 प्रतिशत यूरिया (एक लीटर पानी में 100 ग्राम) का घोल बनाकर पत्तियों पर छिड़काव करने से एक सप्ताह में अधिकांश पत्तियां खेत में ही गिर जाती हैं। इस प्रकार खेत में 1.2-1.4 टन प्रति हैक्टर पत्तियों के अवशेष/बायोमास समावेश होते हैं। ये अवशेष अन्य फसल के अवशेषों की तुलना में जल्दी विघटित होकर खाद का काम करते हैं। कम्पोस्टिंग के बाद अगली फसल के लिए 0.5 टन प्रति हैक्टर जैविक खाद की पूर्ति होती है। हरी पत्तियों में लगभग 4 प्रतिशत नाइट्रोजन होता है, जो अगली फसल की लगभग 50 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर नाइट्रोजन की पूर्ति करती है। इस प्रकार अगली गेहूं की फसल में 10-20 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त होती है।

सारणी-2 के अनुसार एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन से तीन वर्षों में अरहर की औसतन उपज में संस्तुत एनपीके की तुलना में 600 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर बढ़ोतरी हुई है और गेहूं की उपज में 950 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की बढ़ोतरी हुई।

यदि किसान इस तकनीकी को अपनाते हैं तो उपज में बढ़ोतरी के साथ खाद एवं उर्वरक का खर्चा भी कम होता है। किसान को 30 से 40 प्रतिशत का लाभ भी अधिक होगा। किसान, अरहर की पत्तियों को खेत में गिराकर मृदा स्वास्थ्य में अत्यधिक सुधार कर सकते हैं। स्वस्थ धरा तो खेत हरा का सपना साकार हो सकता है

वर्तमान में भूमिगत जल स्तर की लगातार गिरावट के साथ जल की लवणता भी बढ़ रही है। धान की फसल में अत्यधिक जल की आवश्यकता होती है। धान की पुआल को जलाने की समस्या को देखते हुए मृदा सुधार के लिए किसानों के लिए यह तकनीकी अपनाना अति आवश्यक है। अरहर की अतिरिक्त कम अवधि (ईएसडी) वाली किस्मों को उगाकर गेहूं की देरी से बुआई के प्रतिकूल प्रभाव को भी दूर कर सकते हैं। साथ ही, जिन क्षेत्रों में पानी की कमी की स्थितियां हैं, वहां यह प्रोटीन-ऊर्जा-कुपोषण (पीईएम) से निपटने में भी वरदान सिद्ध होगी। ■

भाकृअनुप की लोकप्रिय पत्रिका
'खेती' जुलाई, 2019 अंक के प्रमुख आकर्षण

- बेहद लाभदायक व्यवसाय है बकरी पालन
- जीरो टिलेज तकनीक से गेहूं व ग्रीष्मकालीन मूंग की खेती
- रोशा घास की खेती है, कमाई का जरिया
- कृषि में कटाई उपरांत मशक्कत में कमी एवं सुरक्षा प्रबंधन
- जल संग्रहण तालाबों से समेकित कृषि प्रणाली
- हरी पत्ती आधारित मत्स्य आहार है, एक वैकल्पिक उपाय
- फव्वारा सिंचाई-फसलोत्पादन के लिए लाभकारी पद्धति
- तिलापिया मछली से सुधरेगी मत्स्य पालकों की आर्थिक स्थिति
- चना उत्पादन बढ़ाने की प्रभावी तकनीकें
- दलहनी फसलों का उत्पादन बढ़ाने की रणनीतियां
- ऊसर भूमि सुधार से बढ़ाएं उपज
- गेहूं की उन्नत खेती के लिए रोगों की पहचान एवं नियंत्रण
- हरितगृह गैस उत्सर्जन के प्रति संतुलन में कृषि वानिकी का योगदान

संपर्क सूत्र: व्यवसाय प्रबंधक, भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012 (दूरभाष: 25843657)

खाद्य प्रसंस्करण प्रशिक्षण से कृषक महिलाओं का सशक्तिकरण

लक्ष्मी चक्रवर्ती[1], **स्वप्निल दुबे**[2] और **शिव कुमारी भारती**[3]

"कृषक महिलाओं को खेती के अतिरिक्त अन्य व्यवसाय भी करने होंगे, ताकि वे अधिक आय का सृजन कर आर्थिक रूप से सशक्त बन सकें। कृषि के अतिरिक्त यदि व्यावसायिक कार्यों की बात करें तो अधिकतर महिलाएं खाद्य प्रसंस्करण में पारंगत होती हैं और घर पर ही विभिन्न उत्पादों को बना लेती हैं। इन परंपरागत खाद्य उत्पादों की बाजार में मांग अधिक होने के कारण इन्हें वृहद व व्यावसायिक रूप दिया जा सकता है। विभिन्न खाद्य प्रसंस्करण उत्पादों को तैयार करने वाली कम्पनियां तमाम तरह के प्रसंस्करित खाद उत्पादों को व्यावसायिक रूप से तैयार कर बाजार की मांग के अनुसार अच्छे-खासे मुनाफे में बेचती हैं।"

खाद्य प्रसंस्करण के माध्यम से बड़ी संख्या में रोजगार अवसरों का सृजन किया जा रहा है। देश के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में होटल और रेस्त्रां आदि के व्यवसाय का फैलाव हो रहा है। इनसे रोजगार के अवसर उपलब्ध हो रहे हैं। कृषक महिलाएं, चाहें तो, समूह के माध्यम से एवं स्वयं ही खाद्य प्रसंस्करण का कार्य कर सकती हैं। खाद्य प्रसंस्करण का कार्य कुछ घरेलू उत्पादों जैसे-अचार, पापड़, बड़ी, शुष्कित सब्जियों, चिप्स, कैचप आदि के रूप में तैयार कर पैकिंग करके आसानी से किया जा सकता है।

वर्तमान परिवेश में बढ़ती हुई

[1]वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केन्द्र, रायसेन (मध्य प्रदेश); [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख, कृषि विज्ञान केन्द्र, रायसेन मध्य प्रदेश; [3]वैज्ञानिक, सी.आई.ए.ई, कृषि विज्ञान केन्द्र, भोपाल (मध्य प्रदेश)

मसाला प्रसंस्करण

मसालों का प्रसंस्करण वर्तमान समय में सर्वाधिक प्रचलित एवं लाभदायक व्यवसाय है। इसके साथ ही कृषक महिलाओं के लिए कम समय में अच्छी आय का प्रमुख स्रोत भी है। आजकल मसालों का व्यवसाय काफी बड़े स्तर पर किया जा रहा है। होटल हो या बड़े रेस्ट्रां, सभी में स्वादिष्ट भोजन बनाने के लिए मसालों की आवश्यकता होती है। साबुत मसाले उपलब्ध होने के कारण सीधे उनका प्रयोग करना थोड़ा कठिन कार्य है। इसलिए मसालों की प्रोसेसिंग से तैयार उत्पादों की मांग बढ़ रही प्रोसेसिंग के अंतर्गत मसालों की विभिन्न मात्रा को सही अनुपात में मिलाकर पिसाई करके पैकिंग की जाती है। इसी प्रकार खड़े मसालों को भी पैकिंग करके लघु व्यवसाय के लिए अपना सकते हैं।

महंगाई के कारण कृषक महिलाओं को विभिन्न परिस्थतियों का सामना करना पड़ता है। ये महिलाएं खेती से संबंधित विभिन्न गतिविधियों जैसे-खेतों में मजदूरी, निराई-गुड़ाई, सफाई, पौधशाला की तैयारी, खेतों में रोपाई, अनाजों की सफाई, खाद एवं उर्वरक मिलाना आदि कार्य करती हैं। ये समस्त कार्य या तो अपने खेतों में या दूसरों के खेतों में मजदूरी के रूप में करती है। अपने खेतों में कार्य करने पर यदि कृषि की वैज्ञानिक व नवीन तकनीकों का प्रयोग न किया जाये तो उत्पादन में लगातार कमी होती है। इसके कारण कृषक महिलाएं आर्थिक रूप से लाभान्वित नहीं हो पा रही हैं।

खाद्य प्रसंस्करण प्रशिक्षण हेतु आयोजित कक्षाएं

कृषि विज्ञान केन्द्र की खाद्य प्रसंस्करण के क्षेत्र में भूमिका

देश के विभिन्न हिस्सों में स्थित कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा कृषक महिलाओं के आर्थिक व सामाजिक सशक्तिकरण के लिए अलग-अलग प्रकार से प्रयास किये जा रहे हैं, ताकि उनको आर्थिक रूप से सशक्त बनाया जा सके। इनमें से खाद्य प्रसंस्करण का क्षेत्र प्रमुख है। वर्तमान में खाद्य प्रसंस्करण देश के प्रमुख उद्योगों में से एक है, जो कि देश को सफलता की ओर अग्रसर कर रहा है।

कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए खाद्य प्रसंस्करण आधारित विभिन्न प्रायोगिक प्रशिक्षण देकर संबंधित क्षेत्र में कार्य करने के लिए उनका मार्ग प्रशस्त किया जाता है। इसके साथ ही समूह के माध्यम से कृषक महिलाओं को जोड़कर व्यवसाय करने की सलाह व सहयोग दिया जाता है।

इसी शृंखला में कृषि विज्ञान केन्द्र, रायसेन में स्थित खाद्य प्रसंस्करण प्रशिक्षण संस्थान वित्तपोषित राष्ट्रीय उद्यानिकी मिशन के माध्यम से फल, सब्जियों, अनाज, दालों एवं मसालों के प्रसंस्करण पर आधारित 45 दिवसीय प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। इस दौरान कृषक महिलाओं को विभिन्न प्रसंस्करित उत्पादों को तैयार करने के लिए प्रायोगिक ज्ञान एवं उत्पादों की बाजार मांग से लेकर व पैकेजिंग तक से जुड़े सम्पूर्ण प्रशिक्षण एवं समूह के माध्यम से कार्य करने को प्रेरित किया जाता है।

खाद्य प्रसंस्करण हेतु उपयोगी मशीनी आवश्यकता पर ग्रामीण युवतियों को प्रशिक्षण

क्या है खाद्य प्रसंस्करण

ग्रामीण परिवेश में खाद्यान्न, दलहन, तिलहन, फल एवं सब्जियों का उत्पादन बड़े पैमाने पर हो रहा है। उत्पादन में कृषक एवं कृषक महिलाओं दोनों का ही महत्वपूर्ण योगदान है। कृषक परिवारों के पास भंडारण की तकनीकी ज्ञान की कमी के कारण सम्पूर्ण उत्पादों को सीधे ही बाजारों में बेच दिया जाता है। इस प्रकार यह बहुत ही कम दामों में बाजार में बिकता है। कभी-कभी तो किसानों को मूल पूंजी भी प्राप्त नहीं हो पाती है, जिसके कारण कई बार किसानों को घाटा उठाना पड़ता है।

कुछ फसल उत्पाद ऐसे भी होते हैं,

मसालों का प्रसंस्करण

सारणी: प्रसंस्करण से होने वाले लाभ का आर्थिक विश्लेषण

क्र. सं.	खाद्यान्न	कच्चे उत्पाद का मूल्य	प्रसंस्करित उत्पाद	शुद्ध लाभ प्रतिशत में
1.	अनाज	15 रुपये कि.ग्रा.	आटा, बिस्कुट, अन्य उत्पाद	20-25
2.	दलहन	40-50 रुपये कि.ग्रा.	प्रसंस्करित दाल, बेसन, पापड़, बड़ी अन्य उत्पाद	30-40
3.	फल एवं सब्जियां	समयानुसार	निर्जलीकृत सब्जियां, पाउडर, कैचप, अचार, पल्प, चटनी, रेडी टू सर्व प्रोडक्ट, टॉफी	35-40
4.	मसाले	समयानुसार	मिक्स मसाला, लिक्विड मसाले, खड़े मसालों की पैकिंग	20-35
5.	दूध	35-40 रुपये कि.ग्रा.	घी, लस्सी, दही, पनीर, मक्खन, क्रीम एवं अन्य उत्पाद	38-45

जिनकी भंडारण व संग्रहण क्षमता कम होती है। उत्पाद की प्रकृति शीघ्र खराब होने वाली होती है। ऐसे पदार्थों को यदि प्रसंस्करित किया जाए तो भंडारण क्षमता व मूल्य वृद्धि के साथ कृषक महिलाओं को प्रसंस्करित उत्पाद से रोजगार के साथ अतिरिक्त आय की प्राप्ति भी होती है। कृषक को उत्पाद के अच्छे मूल्य के साथ स्वरोजगार उद्योगों को भी बढ़ावा मिलता है।

फल एवं सब्जियों के प्रसंस्करित उत्पाद

महिलाएं फल एवं सब्जियों के प्रसंस्करित उत्पादों जैसे अचार, जैम, कैचप, सूखी एवं निर्जलीकृत सब्जियां, हिमीकृत सब्जियां और सब्जियों के पाउडर के रूप में तैयार करके बाजार में विक्रय कर सकती हैं। महिलाओं को खाद्य प्रसंस्करण से रोजगार उपलब्ध कराने के लिए भारत सरकार प्रधानमंत्री कौशल विकास एवं कौशल्या योजना के तहत कृषिरत एवं गैर कृषिरत महिलाओं को प्रशिक्षण प्रदान करके उनके कौशल के द्वार को खोलने में प्रयासरत है। इसके साथ ही लघु उद्यम स्थापित करने के लिए आर्थिक रूप से अनुदान भी प्रदान किया जाता है।

प्रसंस्करित उत्पादों से महिलाओं को रोजगार

प्रसंस्करित उत्पादों से महिलाओं के रोजगार की संभावनाओं में सतत् वृद्धि हो रही है। कृषक महिलाएं कृषि कार्य के साथ कुछ समय निकाल कर महिला समूह के माध्यम से प्रसंस्करित उत्पादों को तैयार करने का कार्य कर रही हैं। इस प्रकार रोजगार के नए साधन सृजित हो रहे हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला समूह अनाजों, मसालों, फल एवं सब्जियों के प्रसंस्करण के क्षेत्र में रोजगार स्थापित कर रहे हैं। वर्तमान में प्रसंस्करित उत्पादों का उपभोग शहरों से लेकर ग्रामीण क्षेत्रों तक बढ़ रहा है। खाने की वस्तु हो या पहनने के वस्त्र हों, सभी क्षेत्रों में प्रसंस्करण की महत्वपूर्ण भूमिका है। सभी वर्ग के लोग प्रसंस्करित वस्तुओं को पसंद करते हैं।

प्रसंस्करण क्षेत्र

- फल एवं सब्जियां
- अनाज एवं दालें
- मसाले
- दूध
- ग्रेडिंग एवं पैकिंग

बाजार में प्रसंस्करित उत्पादों की बढ़ती मांग

वर्तमान में सम्पूर्ण बाजार खाद्य प्रसंस्करित उत्पादों पर आधारित है। लोगों की बढ़ती हुई व्यस्तता के कारण सब प्रसंस्करित उत्पादों को खरीदने पर मजबूर हो रहे हैं। इसलिए बाजार में प्रसंस्करण से तैयार उत्पादों की अधिक मांग है। बाजार में यदि देखें तो खाद्य प्रसंस्करित उत्पाद बड़े स्तर पर उपलब्ध हैं। इसलिए पहले की तुलना में वर्तमान में अधिक प्रसंस्करित उत्पादों को तैयार करने वाली अधिक कम्पनियां स्थापित हो रही हैं। ये लोगों को रोजगार भी दे रही हैं।

कृषि विज्ञान केन्द्र, रायसेन द्वारा आयोजित ग्रामीण महिलाओं के लिए खाद्य प्रसंस्करण प्रशिक्षण

प्रसंस्करण में महिला उद्यमियों की भूमिका

खेती से प्राप्त उत्पादों में फल एवं सब्जियों का अग्रणी स्थान है। ये दोनों ही ऐसे उत्पाद हैं, जिनका मूल्य बाजार में बढ़ता-घटता रहता है। इसके साथ ही इनकी शेल्फ लाइफ कम होती है अर्थात् इनमें होने वाले एंजाइम की प्रक्रिया के कारण ये शीघ्र ही खराब हो जाते हैं। खराब होने की प्रवृति के कारण इन्हें कम मूल्य पर भी बेचने की स्थिति किसानों के समक्ष आ जाती है। ऐसी स्थिति में कृषक महिलाओं को कई बार घाटे का सौदा करना पड़ता है। इस घाटे से बचने के लिए कृषक महिलाएं खाद्य प्रसंस्करण की खास तरह की तकनीकों को अपना सकती हैं। इससे फल एवं सब्जियों के टिकाऊ बने रहने के साथ उनके स्वाद एवं मूल्य में भी वृद्धि होती है।

अनाज एवं दालों का प्रसंस्करण

कृषक महिलाएं, अनाज एवं दालों के प्रसंस्करण के माध्यम से भी लघु व्यवसाय प्रारंभ कर सकती हैं। भारत में अनाज एवं दालों का उत्पादन अधिक है। किसानों द्वारा अनाज एवं दालों को बिना प्रसंस्करित किये ही बाजार में बेच दिया जाता है। इससे उन्हें उत्पाद का मूल्य कम प्राप्त होता है एवं कम्पनियां प्रसंस्करित करके अधिक लाभ का अर्जन करती हैं। ऐसी स्थिति में यदि महिलाएं अनाज एवं दालों का प्रसंस्करण करके विभिन्न उत्पादों को तैयार करके बेचें तो आर्थिक रूप से सशक्त होने का बेहतर उपाय सुनिश्चित कर सकती हैं। आज बाजार में दालों की सफाई एवं बिनाई करके पैकेटों में पैक करके मूल्य वृद्धि करके बेचा जा रहा है। यह रोजगार को नए आयाम प्रदान कर रहा है।

खाद्य प्रसंस्करण हेतु प्रायोगिक प्रशिक्षण

दूध प्रसंस्करण

वर्तमान में ग्रामीण क्षेत्रों में दूध की कमी नहीं है। प्रत्येक घर में मवेशी उपलब्ध हैं, जिनकी उत्पादन क्षमता उपयोग से अधिक है। दूध की प्रकृति शीघ्र खराब होने के कारण संग्रहण करना थोड़ा कठिन कार्य है। गांव में दूध के संग्रहण की व्यवस्था पर्याप्त न होने के कारण एवं उपलब्धता अधिक होने के कारण क्षेत्रीय स्तर पर ब्रिकी न हो पाना एक गंभीर समस्या है। दूध व गेहूं ऐसे उत्पाद हैं, जिनके प्रत्येक हिस्से से प्रसंस्करित उत्पाद तैयार किये जा सकते हैं। इसके लिए गांव के स्तर पर दूध का प्रसंस्करण होना अति आवश्यक है। दूध के प्रसंस्करित उत्पादों का मूल्य अधिक होने के कारण मुनाफा ज्यादा होता है। महिलाएं ग्रामीण स्तर पर दूध से घी, पनीर, दही, लस्सी, मक्खन आदि बनाकर बाजार में आसानी से बेच सकती हैं। दूध की ब्रिकी भले ही क्षेत्रीय स्तर पर अधिक न हो, परन्तु इनसे तैयार प्रसंस्करित उत्पादों की ब्रिकी अधिक होती है।

वर्तमान समय में बाजार ऐसे उत्पाद प्रसंस्करित उत्पादों पर ही निर्भर है। समय की कमी एवं बढ़ती हुई खाद्य उत्पादों की मांग के आधार पर बाजार में खाद्य प्रसंस्करण से तैयार उत्पादों की मांग अधिक है। बाजार की मांग के अनुसार महिलाएं अनाज एवं दालों के प्रसंस्करित उत्पाद जैसे दाल, बेसन, मल्टीग्रेन आटा, बिस्कुट, सोया आटा एवं अनाजों जैसे-ज्वार, बाजरा, मक्का, रागी से तैयार आटा एवं पैकेज दालें, केक, कुकीज आदि तैयार करके आसानी से बाजार में बेच सकती हैं।

कौशल विकास योजना

महिलाओं को स्वरोजगार के क्षेत्र में प्रशिक्षित करने के लिए सरकार द्वारा कौशल विकास योजनाओं का संचालन किया जा रहा है। महिलाओं को उनकी रुचि के अनुसार प्रशिक्षित करके रोजगार स्थापित करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

प्रसंस्करण से महिला उद्यमियों को लाभ

- प्रसंस्करण के माध्यम से महिलाओं को स्वरोजगार की प्राप्ति होती है, जिससे उनका आर्थिक सशक्तिकरण होता है
- बाजार में उत्पाद को कम दाम में बेचने से मुक्ति मिलती है
- उत्पाद की मूल्यवर्धन क्षमता में वृद्धि होने से उत्पाद का बाजार में मूल्य अधिक प्राप्त होता है
- समूह के माध्यम से कार्य करने में सहायता प्राप्त होती है

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिए वित्तीय सहायता योजनाएं

मध्य प्रदेश शासन द्वारा भी स्वरोजगार आधारित योजनाएं संचालित हैं, जिनके तहत महिला उद्यमियों व बेरोजगारों को स्वरोजगार स्थापित करने के लिए अनुदान प्रदान किया जाता है, ताकि महिलाएं अपना रोजगार स्थापित कर सकें। इनमें प्रमुख हैं:

- मुख्यमंत्री स्वरोजगार योजना
- मुख्यमंत्री युवा उद्यमी योजना
- प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम
- मुख्यमंत्री आर्थिक कल्याण योजना
- मुख्यमंत्री कृषक उद्यमी योजना

पर्वतीय क्षेत्रों में सोयाबीन है लाभ की खेती

अनुराधा भारतीय, निर्मल चन्द्रा, जे.पी. आदित्य, रमेश सिंह पाल, हेमलता जोशी और **लक्ष्मीकांत**
भाकृअनुप-विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)

“उत्तराखंड में खरीफ की प्रमुख तिलहनी फसल सोयाबीन एवं भट्ट (काली सोयाबीन) हैं। ग्रामीण, पिछड़े तथा जनजातीय समुदायों को पोषण और आजीविका सुरक्षा सुनिश्चित करने में ये फसलें एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में इन फसलों के उत्पादन में वृद्धि की अपार संभावनाएं हैं। परंतु समस्या यह है कि किसान अधिक उत्पादकता प्राप्त करने के लिए उपयोगी उन्नत प्रजातियों तथा वैज्ञानिक तकनीकों से अनभिज्ञ हैं। इसके साथ ही उन्नत किस्मों के गुणवत्तायुक्त बीजों की प्रायः अनुपलब्धता के कारण स्थानीय किस्मों को पारंपरिक कृषि पद्धतियों के साथ उगाने को विवश हैं। इन क्षेत्रों में सोयाबीन और भट्ट के उत्पादन से आर्थिक लाभ मिलता है। इसे ध्यान में रखते हुए इन फसलों के उत्पादन में सुधार करने के उद्देश्य से भाकृअनुप-विपकृअनुसं, अल्मोड़ा द्वारा विभिन्न गांवों के किसानों के बीच वैज्ञानिक उत्पादन तकनीकों के प्रसार के प्रयास किए गए। कृषकों द्वारा सोयाबीन व भट्ट की उन्नत किस्मों को अपनाकर स्थानीय किस्मों की तुलना में अधिक उत्पादन तथा आर्थिक लाभ प्राप्त करना पर्वतीय क्षेत्रों में उन्नत कृषि उत्पादन तकनीकों के प्रभावी प्रसार का एक सफल उदाहरण है।”

भारत के कृषि पारिस्थितिक तंत्रों में पर्वतीय क्षेत्रों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। देश के हिमालयी क्षेत्र परंपरागत रूप से जीविकोपार्जन के साधनों से वंचित तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। ग्रामीण, पिछड़े तथा जनजातीय समुदाय अपनी खाद्य एवं आजीविका सुरक्षा के लिए मुख्यतः कृषि पर निर्भर हैं। अत्यधिक असहिष्णु कृषि पारिस्थितिकी के कारण यह क्षेत्र बेहतर कृषि तकनीकी का लाभ नहीं उठा पाया है। इसके साथ ही कठोर भौगोलिक परिस्थितियां एवं जलवायु जैसे-अधिक वर्षा, फसल के जीवन चक्र के दौरान कम तापमान भी इस क्षेत्र में फसलों की कम उत्पादकता के कारण हैं।

उत्तर-पश्चिमी हिमालयी पर्वतीय राज्य उत्तराखंड में सोयाबीन एक महत्वपूर्ण खरीफ फसल है। यहां यह लगभग 12 हजार हैक्टर क्षेत्रफल में उगायी जाती है। यह राज्य समस्त उत्तर-पश्चिमी राज्यों में सोयाबीन के क्षेत्रफल एवं उत्पादन में क्रमशः 95 प्रतिशत एवं 94 प्रतिशत का योगदान देता है। सोयाबीन की भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में भी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है। वर्तमान में, सोयाबीन का क्षेत्रफल 10.91 मिलियन हैक्टर तथा इसका उत्पादन और उत्पादकता क्रमशः 10.37 मिलियन टन और 951 कि.ग्रा./हैक्टर है। खाद्य तेलों में, सोयाबीन का तेल सबसे अधिक इस्तेमाल होने वाले तेलों में से एक है। हमारे देश में प्रति व्यक्ति आय में बढ़ोतरी, शहरीकरण एवं बढ़ती जनसंख्या के कारण खाद्य तेलों एवं तैलीय-खली की मांग दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। पिछले तीन दशकों से भारत में तिलहन उत्पादन में तीन गुना बढ़ोतरी हुई है। तिलहन उत्पादन 1980-81 में 9.39 मिलियन टन था, जो 2016-17 में बढ़कर 31.27 मिलियन टन हो गया है। खाद्य तेलों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 1970-71 में 3.5 कि.ग्रा./व्यक्ति/वर्ष थी जो वर्तमान में बढ़कर 17 कि.ग्रा./व्यक्ति/वर्ष हो गयी है।

सोयाबीन की फसल 1970 के दशक तक कम ही जानी जाती थी, पर आज यह भारत में एक महत्वपूर्ण तिलहनी फसल के रूप में उभरी है। सोयाबीन में प्रोटीन एवं तेल की भरपूर मात्रा होने के कारण आज पूरे विश्व में खाद्य तेल एवं पौष्टिक आहारों

पोषण का स्रोत सोयाबीन

के लिए यह एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इसके अतिरिक्त, उत्तराखंड में भट्ट, वर्षाश्रित फसल के रूप में साढ़े छह हजार हैक्टर क्षेत्रफल में उगाई जाती है, जिससे 5.2 हजार टन उत्पादन प्राप्त होता है। भारत में सोयाबीन की खेती शुरू होने के काफी समय पहले से ही काली सोयाबीन को भट्ट, भटमान, भट्टमाश, रामकुल्थी, कालीतूर और कालाहुल्गा आदि अनेक नामों से उगाया जाता था। उत्तराखंड में भट्ट की उत्पादकता लगभग 798 कि.ग्रा./हैक्टर है, जो कि राज्य में सोयाबीन की उत्पादकता (1293 कि.ग्रा./हैक्टर) से काफी पीछे है। हिमालयी पर्वतीय क्षेत्रों में इसे दाल के रूप में प्रयोग किया जाता है। हमारे देश में भट्ट की खेती पर्वतीय क्षेत्रों के आम ग्रामीण, जनजातीय और पिछड़े लोगों तक ही सीमित है, जहां पोषण व खाद्य सुरक्षा के बहुत ही कम विकल्प मौजूद हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों में सोयाबीन व भट्ट का उत्पादन पिछले 10-15 वर्षों से लगभग स्थिर है। वर्तमान में पर्वतीय क्षेत्रों में इन फसलों के उत्पादन स्तर और मांग में अंतर आर्थिक दृष्टि से पिछड़े ग्रामीण तथा जनजातीय समुदाय की पोषण और आजीविका सुरक्षा के लिए एक चुनौती है। इन क्षेत्रों में इस फसल के उत्पादन में वृद्धि की अपार संभावनाएं हैं।

चयनित गांवों में प्रचलित फसल प्रणाली

उत्तराखंड के अल्मोड़ा जिले के चयनित गांवों बिमोला एवं रॉनडाल में चावल/लघु कदन्न फसलें/मक्का/सोयाबीन/भट्ट-गेहूं/मसूर एक प्रचलित फसल प्रणाली है। चावल तथा लघु कदन्न फसलें (मंडुवा, झिगोंरा आदि)

सोयाबीन की सूखी फलियां एवं बीज

अग्रिम पंक्ति प्रदर्शनों के लिए चयनित उन्नत प्रजातियां

ग्रामीण परिवारों की आय में वृद्धि के लिए सोयाबीन (वी.एल. सोया 47, वी.एल. सोया 63 एवं वी.एल. सोया 59) व भट्ट (वी.एल. सोया 65) की उन्नत प्रजातियों को अल्मोड़ा जिले के रॉन-डाल एवं बिमोला गांवों के कृषकों द्वारा अनुशंसित कृषि तकनीकों के साथ उगाया गया (सारणी-1)। इन उन्नत प्रजातियों की खेती परंपरागत स्थानीय मानक किस्मों तथा परंपरागत कृषि पद्धतियों से की गई। इसका लक्ष्य कृषकों को स्थानीय कृषि परिस्थितियों में इन प्रजातियों से प्राप्त परिणामों जैसे उच्च उपज, जैविक तथा अजैविक दबावों के लिए प्रतिरोधिता, गुणवत्ता एवं आर्थिक शुद्ध लाभ के विषय में जागरूक करना था।

वी.एल. सोया 47

यह प्रजाति भारत के उत्तर-पश्चिमी पर्वतीय क्षेत्रों के लिए समय से बुआई वाले वर्षाश्रित अवस्थाओं के लिए जारी की गयी है। इसकी उपज क्षमता 19-23 क्विंटल/हैक्टर है और यह 125-130 दिनों में परिपक्व होती है। यह फ्रॉग आइ लीफ स्पॉट रोग के लिए उच्च प्रतिरोधी है।

वी.एल. सोया 59

यह प्रजाति भारत के उत्तर-पश्चिमी पर्वतीय क्षेत्रों के लिए समय से बुआई वाले वर्षाश्रित अवस्थाओं के लिए जारी की गयी है। इस प्रजाति की उपज क्षमता 25-28 क्विंटल/हैक्टर है और यह 120-130 दिनों में तैयार होती है। यह कम लिनोलिनिक अम्ल की मात्रा वाली प्रजाति है। यह फलीदाह तथा फ्रॉग आइ लीफ स्पॉट रोगों के लिए मध्यम प्रतिरोधी है।

वी.एल. सोया 63

सोयाबीन की यह प्रजाति उत्तर पश्चिमी पर्वतीय क्षेत्रों में समय से बुआई वाली वर्षाश्रित अवस्थाओं के लिए जारी की गयी है। यह 108-129 दिनों में परिपक्व होती है और इसकी उपज क्षमता 25-28 क्विंटल/हैक्टर है। यह फलीदाह प्रतिरोधी तथा फ्रॉग आइ लीफ स्पॉट रोगों के लिए मध्यम प्रतिरोधी है।

वी.एल. सोया 65

भट्ट की यह प्रजाति उत्तराखंड के स्थानीय जर्मप्लाज्म से चयनित कर विकसित की गयी है। राज्य प्रजाति विमोचन समिति द्वारा यह प्रजाति उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में समय से बुआई वाले वर्षाश्रित जैविक स्थितियों के लिए जारी की गयी है। यह 115-120 दिनों में परिपक्व होती है। इसकी उपज क्षमता 11-14 क्विंटल/हैक्टर है, जो कि स्थानीय किस्मों की तुलना में काफी अधिक है। यह फ्रॉग आइ लीफ स्पॉट, फलीदाह तथा पर्णदाह रोगों की प्रतिरोधी है।

सारणी 1. उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में सोयाबीन और भट्ट की अनुशंसित उत्पादन तकनीकी और पारंपरिक पद्धतियां

क्र.सं.	निवेश/कृषि पद्धति	उन्नत उत्पादन प्रौद्योगिकी	परंपरागत कृषक पद्धति
1.	प्रजाति	वी.एल. सोया 47, वी.एल. सोया 59, वी.एल. सोया 63 तथा वी.एल. सोया 65	सोयाबीन/स्थानीय भट्ट
2.	बुआई का समय	मई के अंतिम सप्ताह से जून अंत तक	मानसून के आगमन पर
3.	दूरी	45 × 8-10 सें.मी.	ब्रॉडकास्टिंग (मिश्रित फसल के रूप में मंडुवा के साथ)
4.	पौधों की संख्या	0.4 मिलियन/हैक्टर	मिश्रित फसल के रूप में मंडुवा के साथ तथा धान के खेतों की मेड़ों पर
5.	गहराई	3 से 5 सें.मी.	3-5 सें.मी.
6.	खाद और उर्वरक	10 टन गोबर की खाद/हैक्टर+20:80:20:20 N:P2O5:K2O:S कि.ग्रा./हैक्टर	10-15 टन गोबर की खाद/हैक्टर
7.	बीज दर	75 कि.ग्रा./हैक्टर	लगभग 100 कि.ग्रा./हैक्टर
8.	बीज उपचार	थिरम 75 WP + कार्बेंडाजिम 50 WP (2:1)/3 ग्राम/कि.ग्रा. बीज अथवा थिरम + कार्बेक्सिम/2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज अथवा ट्राइकोडर्मा विरडी/4.5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज	कुछ नहीं
9.	बीजोपचार	लगभग 5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज ब्रैडी राइजोबियम जैपोनिकम कल्चर + पीएसबी/पीएसएम 5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज	कुछ नहीं
10.	खरपतवार नियंत्रण	2 बार निराई-गुड़ाई। प्रथम निराई-गुड़ाई, बुआई के 25 से 30 एवं दूसरी 45 से 50 दिनों बाद। खरपतवारनाशी पैंडिमिथेलीन/1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टर बुआई के तुरंत बाद	हाथ से 2 बार निराई-गुड़ाई करना/पहली बुआई के 25 से 30 दिनों बाद एवं दूसरी फूल आने से पहले

सारणी 2. सोयाबीन और भट्ट की उन्नत किस्मों से उपज बढ़ोतरी

वर्ष	ग्राम	क्षेत्रफल (हैक्टर)	कृषकों की संख्या	उन्नत प्रजातियां	उपज (कि.ग्रा./हैक्टर)		(प्रतिशत) उपज बढ़ोतरी
					उन्नत किस्म	स्थानीय किस्म	
खरीफ 2015	रॉन डाल, हवालबाग, अल्मोड़ा	2.18	51	वी.एल. सोया 47	2,032	1,382	47.11
				वी.एल. सोया 65	1,296	667	94.18
खरीफ 2016	बिमोला, हवालबाग, अल्मोड़ा	1.26	62	वी.एल. सोया 47, वी.एल. सोया 63 एवं वी.एल. सोया 59	1,994	1396	42.84
				वी.एल. सोया 65	1,189	706	68.89
खरीफ 2017	रॉन डाल, हवालबाग, अल्मोड़ा	2.40	84	वी.एल. सोया 47 एवं वी.एल. सोया 63	1,933	1403	37.82
				वी.एल. सोया 65	1,280	816	56.71
	कुल योग	5.84	197	सोयाबीन	1,986	1,394	42.59
				भट्ट भट्ट	1,255	730	73.26

सारणी 3. सोयाबीन और भट्ट की उन्नत किस्मों से आर्थिक लाभ

वर्ष	फसल	लागत (रुपये/हैक्टर)		शुद्ध लाभ (रुपये/हैक्टर)		लाभ: लागत (रुपये/हैक्टर)	
		उन्नत किस्म	स्थानीय किस्म	उन्नत किस्म	स्थानीय किस्म	उन्नत किस्म	स्थानीय किस्म
खरीफ 2015	सोयाबीन	44,058	43,308	39,222	13,232	0.89	0.31
	भट्ट	46,308	47,808	45,632	19,552	0.99	0.41
खरीफ 2016	सोयाबीन	51,498	51,748	50,192	19,442	0.97	0.38
	भट्ट	53,748	56,248	54,452	21,932	1.01	0.39
खरीफ 2017	सोयाबीन	44,058	43,308	35,193	14,197	0.80	0.33
	भट्ट	46,308	47,808	44,542	18,302	0.96	0.38
औसत	सोयाबीन	46,538	46,121	41,536	15,624	0.89	0.34
	भट्ट	48,788	50,621	48,209	19,929	0.99	0.39

सोयाबीन उत्पादन में अवरोधों का आंकलन

क्षेत्र के कृषकों द्वारा सोयाबीन एवं भट्ट की खेती करने में आने वाले अवरोधों का आंकलन किया गया, जिनका विवरण निम्नलिखित है :

- **परिस्थितिजनित अवरोध:** वर्षा की अनिश्चितता, जंगली जानवरों द्वारा नुकसान एवं समय से श्रमिकों का उपलब्ध न होना
- **उन्नत उत्पादन तकनीकों का अभाव:** उन्नतशील सोयाबीन की प्रजातियों के संबंध में ज्ञान का अभाव, बीज शोधन से संबंधित जानकारी की कमी एवं पौध सुरक्षा से संबंधित ज्ञान का अभाव
- **सूचना संबंधी अवरोध:** समय पर सहायता की अनुपलब्धता एवं प्रसार एजेंसियों से सम्पर्क की कमी
- **आर्थिक अवरोध:** कृषि निवेशों की अत्यधिक कीमतें, फसल सुरक्षा रसायनों एवं फसल सुरक्षा उपकरणों का अत्यधिक मूल्य
- **फसल उत्पादन के अवरोध:** अत्यधिक कीटों एवं रोगों का प्रकोप, उन्नत सोयाबीन प्रजातियों की अनुपलब्धता एवं चिड़ियों द्वारा अंकुरण के समय नुकसान
- **बिक्री संबंधित अवरोध:** क्षेत्र में सोयाबीन प्रसंस्करण सुविधा का अभाव, अनिश्चित बाजार भाव एवं बाजार का अभाव

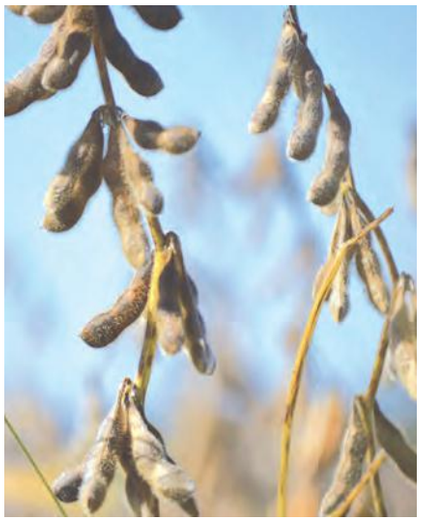

सोयाबीन की परिपक्व फलियां

सोयाबीन की फसल

उत्पादन तकनीकों से उपज बढ़ोतरी एवं आर्थिक लाभ

उन्नत प्रजातियों के साथ उन्नत उत्पादन तकनीकी के प्रभाव के फलस्वरूप बहुत ही आशाजनक परिणाम प्राप्त हुए। उन्नत प्रजातियों का उत्पादन और आर्थिक लाभ (सारणी-2) सोयाबीन एवं भट्ट दोनों में स्थानीय प्रजातियों के सापेक्ष काफी अधिक था। हालांकि, भट्ट (1,255 कि.ग्रा./हैक्टर) का उपज स्तर सोयाबीन (1,986 कि.ग्रा./हैक्टर) से काफी कम था, लेकिन लाभप्रदता विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ कि पिछले 3 वर्षों में सोयाबीन (41,536 रुपये) की तुलना में भट्ट (48,209 रुपये) से अधिक लाभ प्राप्त हुआ है। लाभ:लागत अनुपात से स्पष्ट है कि सोयाबीन (0.89) की तुलना में भट्ट (0.99) की खेती पर्वतीय क्षेत्रों में अधिक लाभदायक है (सारणी-3)। इसका कारण उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में पीले सोयाबीन की तुलना में भट्ट की अच्छी कीमत का प्राप्त होना है। पर्वतीय क्षेत्रों में भट्ट का अच्छा मूल्य एवं सुनिश्चित बाजार उपलब्ध है, क्योंकि भट्ट पर्वतीय क्षेत्रों की पारंपरिक खाद्य फसल है तथा स्थानीय निवासियों द्वारा भट्ट को दैनिक भोजन में दाल के रूप में उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त पर्वतीय क्षेत्रों में सोयाबीन तेल निष्कर्षण तथा सोयाबीन आधारित उद्योगों की अनुपलब्धता है, जिसमें कच्चे माल के रूप में सोयाबीन का उपयोग कर सकते हैं। इस प्रकार पर्वतीय क्षेत्रों के कृषक, भट्ट की तुलना में पीले सोयाबीन की खेती से आर्थिक लाभ लेने में समर्थ नहीं हैं। इसलिए उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में भट्ट की खेती व्यावसायिक रूप से अधिक लाभदायक है।

खरीफ की प्रमुख फसलें हैं, जबकि गेहूं और मसूर इन गांवों में पूर्ण रूप से वर्षा आधारित रबी फसलें हैं। तिलहनों में सोयाबीन/भट्ट भी काफी क्षेत्र में फैली हुई है। चयनित गांवों में कृषि उत्पादकता काफी कम है। सामान्यत: यहां के कृषक चावल, लघु कदन्न फसलें, मक्का, गेहूं, मसूर आदि को मुख्यत: अपनी दैनिक आहार की आवश्यकता की पूर्ति के लिए उगाते हैं और अतिरिक्त आय के लिए बहुत कम मात्रा बाजार में बेच पाते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में सोयाबीन एवं भट्ट की खेती परंपरागत रूप से छोटे और सीमांत कृषकों द्वारा की जाती है। ये फसलें पर्वतीय क्षेत्रों की जलवायु तथा पारंपरिक फसल प्रणाली के बेहद अनुकूल हैं, जहां ये पूर्ण रूप से जैविक वर्षाश्रित स्थितियों में उगाई जाती हैं।

पौष्टिक गुणों से भरपूर है काली सोयाबीन

सोयाबीन की बढ़ती खेती

सोयाबीन पौध

पर्वतीय क्षेत्रों में इन दोनों फसलों को बोने का उपयुक्त समय जून का दूसरा पखवाड़ा है, जिसमें अगस्त मध्य से सितंबर मध्य तक फूल आते हैं और अक्टूबर मध्य या अंत तक इसकी कटाई कर ली जाती है। स्थानीय भट्ट को उगाने की प्रचलित प्रणाली के अंतर्गत इसे मंडुवा (इलुसिन कोरेकाना) के साथ मिश्रित फसल के रूप में उगाया जाता है। सोयाबीन एवं भट्ट को धान के खेतों की मेड़ों पर भी उगाया जाता है तथा सामान्यत: भट्ट को एकल फसल के रूप में नहीं बोया जाता है।

किसानों के खेतों में अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन लगाने से पहले कृषकों से इसकी कृषि के प्रति उनका रुझान, उनकी कृषि प्रणालियों, संसाधनों और फसल प्रणाली की समझ, वर्तमान कृषि में निवेश का स्तर तथा क्षेत्र की प्रमुख फसलों की उत्पादकता आदि के विषय में जानकारियां एकत्रित की गईं। बेहतर प्रौद्योगिकी के अच्छे प्रभाव के लिए खेतों को उनकी पहुंच, खेत आकार, विन्यास, मिट्टी का प्रकार और स्थिति के आधार पर चयनित किया गया। चयनित गांवों में सोयाबीन एवं भट्ट की कोई व्यवस्थित खेती नहीं थी। कृषकों द्वारा इन फसलों को स्वयं के उपभोग के लिए लघु कदन्न फसलों के साथ मिश्रित फसल के रूप में उगाया जाता था। इस क्षेत्र में पारंपरिक सोयाबीन की खेती धान के खेतों की मेड़ों पर मानसून आने पर की जाती है और मिश्रित रूप में मंडुवा के साथ उगायी जाती है। पर्वतीय क्षेत्र में सोयाबीन की एकल फसल भी ली जाती है, लेकिन भट्ट को पूर्णतया मिश्रित फसल के रूप में उगाया जाता है। इसलिए उत्पादन में सुधार करने के उद्देश्य से सोयाबीन एवं भट्ट की उन्नत प्रजातियों को एकल फसल के रूप में किसानों के खेतों में प्रदर्शित किया गया। सभी महत्वपूर्ण कृषि कार्य जैसे बुआई, उर्वरकों का प्रयोग, खरपतवार नियंत्रण, पौध संरक्षण उपाय, कटाई, मड़ाई तथा उत्पाद का वजन आदि सुनिश्चित किए गए। किसानों को उन्नत क्रियाकलापों की बेहतर समझ के लिए प्रत्येक विषय पर चर्चा करने के लिए प्रोत्साहित किया गया तथा प्रक्षेत्र दिवसों का आयोजन किया गया। सोयाबीन तथा भट्ट के मूल्यवर्धित उत्पाद जैसे टोफू, दूध, बड़ियां इत्यादि बनाने की विधियों का प्रदर्शन भी किया गया।

हिमालयी पर्वतीय क्षेत्र उन्नत कृषि तकनीकों के प्रचार व प्रसार की दृष्टि से अत्यधिक वंचित है। भाकृअनुप-विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा द्वारा आयोजित अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन, सोयाबीन एवं भट्ट की किस्मों की उन्नत उत्पादन तकनीकी के साथ लोकप्रिय बनाने का प्रयास इस क्षेत्र के किसानों के लिए वरदान साबित हुआ है। पर्वतीय क्षेत्रों में सोयाबीन एवं भट्ट के उत्पादन को बढ़ाने के लिए एक बहुमुखी दृष्टिकोण की आवश्यकता है। कृषि विकास संस्थाओं की पहल इन फसलों के उत्पादन स्तर और आवश्यकता के अंतर को काफी कम कर सकती है। सोयाबीन एवं भट्ट की उत्पादन तकनीकी के तीव्र प्रसार के लिए राज्यव्यापी प्रदर्शनों के लिए राज्य के हर विकासखंड से कुछ गांवों को अंगीकृत किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त राज्य में सोयाबीन तेल निष्कर्षण तथा सोयाबीन आधारित उद्योगों की स्थापना आवश्यक है। मूल्यवर्धित उत्पादों का विकास एवं प्रशिक्षण भी पर्वतीय क्षेत्रों के कृषकों का रुझान सोयाबीन व भट्ट की व्यावसायिक खेती की ओर बढ़ा सकता है। ■

किसानों की आय बढ़ा सकती है सोयाबीन की खेती

झींगा गड्ढे से जैविक अपशिष्ट प्रबंधन

नरेश राज कीर, उदयराम गुर्जर, सुमन ताकर, राजपाल यादव और **खेमराज बुनकर**
भाकृअनुप-केंद्रीय मात्स्यिकी शिक्षण संस्थान, मुंबई-400061 (महाराष्ट्र)

"वैज्ञानिक तरीके से एक कि.ग्रा. झींगा उत्पादन में लगभग 500 ग्राम जैविक अपशिष्ट निकलता है। अगर इन अपशिष्टों का उचित तरीके से प्रबंधन नहीं किया जाता है तो झींगे में बहुत सारे संक्रामक रोग हो सकते हैं। इन अपशिष्टों का प्रबंधन अति आवश्यक है। झींगा मल से निकले अपशिष्ट का कृषि के लिए कार्बनिक खाद के रूप में इस्तेमाल करके किसानों को फायदा पहुंचाया जा सकता है।"

खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) के अनुसार जलकृषि वैश्विक मानव मछली खपत का 47 प्रतिशत (51 मिलियन टन) हिस्सा प्रदान करती है। जनसंख्या वृद्धि और प्रति व्यक्ति मछली खपत निरंतर बढ़ने के साथ-साथ जलकृषि उत्पादन को बढ़ाना भी जरुरी है। इसकी बड़ी मात्रा हासिल करने के लिए भंडारण (स्टॉकिंग) क्षमता और तालाब की दशा सबसे अधिक महत्वपूर्ण मानदंड हैं। तालाब में सघन कृषि के लिए अत्यधिक इनपुट (मुख्य रूप से तैयार खाद्य एवं उर्वरक) की जरुरत होती है। बचा हुआ खाद्य पदार्थ एवं झींगे द्वारा उत्सर्जित पदार्थों का जमाव होने से इन कार्बनिक पदार्थों का विघटन होने लगता है। इससे तालाब के तलछट में हानिकारक गैसों का निर्माण होता है।

झींगा तालाब के केंद्र में एकत्रित स्लज (कीचड़) कई संक्रामक रोगों का मुख्य कारण है। कार्बनिक अपशिष्ट तालाब की तली तक पहुंच जाता है जहां अधिकांश अनोक्सिक क्रियायें होती हैं और अमोनिया एवं हाइड्रोजन सल्फाइड का निर्माण होता है। इससे झींगों में तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है। यह तनाव जल्दी और आसान संक्रमण का मौका देता है। ऐसी समस्याओं के निदान के लिए अब तक बहुत सारी भौतिक, रासायनिक और जैविक तकनीकों का उपयोग किया गया है जैसे-पानी का आदान-प्रदान, वायु का संचार, तलछट को हटाना एवं चूना डालना इत्यादि। आजकल झींगा तालाब से कार्बनिक अपशिष्टों के उचित प्रबंधन के लिए झींगा मल के उपयोग के तरीके तलाशे जा रहे हैं।

कार्बनिक खाद के रूप में उपयोगी है झींगा अपशिष्ट

झींगा गड्ढे के लाभ

- संक्रमण की आशंका कम
- झींगा तनावमुक्त
- हानिकारक गैसों का निर्माण कम
- एफ.सी.आर. नियंत्रित
- झींगा तालाब प्रदूषण मुक्त
- झींगा में मृत्युदर कम
- सामान्य झींगा पालन की तुलना में इस विधि का उपयोग करने से किसानों की आय में वृद्धि

झींगा पालन

झींगा अपशिष्ट एकत्रण

दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों में जैविक अपशिष्टों के जमाव की समस्या के समाधान के लिए इस तकनीक का उपयोग किया जा रहा है। बांग्लादेश और भारत में झींगा गड्ढे की स्थापना की ओर ध्यान गया है। इसके लिए तालाब के कुल सतह क्षेत्र का लगभग 5-7 प्रतिशत का उपयोग कर रहे हैं। झींगा शौचालय की स्थापना के लिए तालाब का आकार लगभग 1000-5000 वर्ग मीटर होना चाहिए। तालाब के तल में केंद्र की ओर ढलान होना चाहिए, जिससे अपशिष्ट पदार्थ केंद्र की तरफ 2-3 फीट गहरे गड्ढे या पिट में एकत्रित हो जाये। यह अपशिष्ट एक साइफनिंग मोटर से हर सप्ताह बाहर निकल दिया जाता है। आजकल नई प्रणाली में कार्बनिक अपशिष्ट को निकालने के लिए केंद्रीय नली में एक एचडीपीई और रबर पैराबोला कवर प्रयोग किया जा रहा है। ■

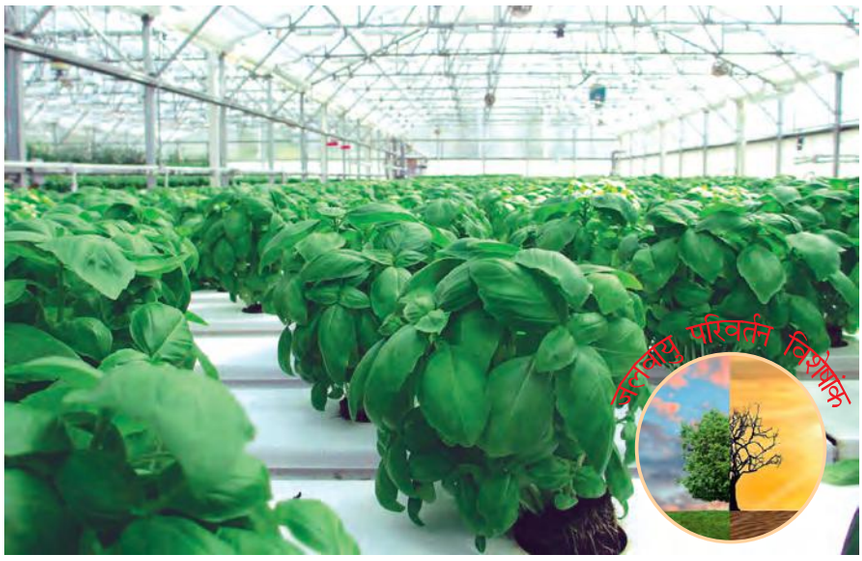

संरक्षित खेती दोगुनी आय का स्रोत

प्रदीप कुमार सिंह*
शेर-ए-कश्मीर कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कश्मीर,
शालीमार, श्रीनगर (जम्मू और कश्मीर)

"संरक्षित क्षेती, संरक्षित वातावरण में कृषि विकास व रोजगार की दिशा में एक ऐसी तकनीक है, जिससे अब लघु व सीमान्त किसान भी आय दोगुनी करके सुनहरे भविष्य का सपना देख सकते हैं। यह उन क्षेत्रों के किसानों के लिए विशेषकर उपयोगी है, जहां पानी की कमी है। अतिवृष्टि या ओले, आवारा पशुओं व बंदरों आदि की समस्याएं कृषि विकास में बाधा बन रही हैं। इसके द्वारा सब्जी उत्पादन खुले उत्पादन से न केवल 5 से 6 गुना तक अधिक होता है, बल्कि उत्पादों की गुणवत्ता अति उत्तम होती है। इसके अलावा समय पर नर्सरी तैयार की जा सकती है, जिससे पॉलीहाउस के बाहर भी सब्जियों एवं फूलों का क्षेत्रफल बढ़ाया जा सकता है।"

बेमौसमी सब्जियों एवं फूलों की अधिकतम उत्पादकता लेने तथा उनकी गुणवत्ता बनाये रखने के लिए पॉलीथीन का प्रयोग किया जाता है। यह एक ढांचे के ऊपर पॉलीथीन, जो कि पारदर्शी एवं सूर्य की पराबैंगनी किरणों के प्रति प्रतिरोधी होती है, से ढककर अंदर से सूक्ष्म वातावरण को पूरी तरह से या आंशिक रूप से नियंत्रित कर तैयार किया जाता है। इस तरह के ढांचे को पॉलीहाउस या संरक्षित गृह कहते हैं। संरक्षित गृह का तापमान पॉलीथीन के कारण 5^0-10^0 सेल्सियस बढ़ जाता है। इस तापमान को गर्मी एवं सर्दी में अनेक तरीके से नियंत्रित कर सकते हैं। संरक्षित गृह के अंदर हम एक वर्ष में तीन से चार सब्जी वाली फसलें उगा सकते हैं। क्योंकि इसके अंदर के वातावरण को फसल के अनुसार नियंत्रित किया जा सकता है। संरक्षित वातावरण में खेती करने से गुणवत्तायुक्त पैदावार ली जा सकती है। संरक्षित वातावरण में रोग एवं नाशीजीवों का प्रभावी नियंत्रण भी संभव है। विपरीत मौसम (अत्यधिक पाला, कोहरा, ओला, वर्षा, ठंडी एवं गर्म हवा आदि) से फसलों का बचाव किया जा सकता है। पॉलीहाउस के अंदर बीजों का अंकुरण व जमाव शीघ्र होता है और सब्जियों की पौध एवं फूल शीघ्र तैयार होते हैं। यह तकनीक ग्रामीण महिलाओं एवं बेरोजगार युवकों के लिए स्वरोजगार का भी सुअवसर प्रदान करती है एवं किसानों की आय को भी दोगुनी करती है।

संरक्षित वातावरण में खेती एक पूंजी सघन व्यवसाय है जिसमें आरम्भिक पूंजी की बहुत आवश्यकता होती है। हालांकि 80 से 85 प्रतिशत अनुदान दिया जाता है, फिर भी किसानों को काफी आरम्भिक व कार्यकारी पूंजी की आवश्यकता रहती है। एक सर्वेक्षण के अनुसार 250 वर्ग मीटर पॉलीहाउस के लिए सब्सिडी के अलावा लगभग 42 हजार रुपये (85 प्रतिशत सब्सिडी से 56 हजार रुपये)(80 प्रतिशत सब्सिडी) आरम्भिक पूंजी तथा 16 से 20 हजार रुपये कार्यकारी पूंजी के रूप में खर्च करने पड़ते हैं। अत: उत्पादन मूल्य संवर्धन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। यहां पर उत्पादन का मूल्य ही सम्भावित आय व लाभ का द्योतक है। इसलिए उत्पादन के साथ मण्डी पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए। किसान अपने क्षेत्र की जलवायु के अनुसार नगदी फसल को अपनाकर सीमित भूमि से उत्पादकता में वृद्धि करके अपनी आय को धीरे-धीरे दोगुनी कर सकते हैं।

संरक्षित खेती के अंतर्गत पौधों को ऐसा वातावरण प्रदान किया जाता है, जिसमें पौधे आसानी से बढ़ सकें एवं जीवित रह सकें। पौधों को तापमान, आर्द्रता, नमी, प्रकाश इत्यादि को उनकी आवश्यकतानुसार प्रदान करना संरक्षित खेती कहलाता है। पौधों की बढ़वार के लिए अनुकूल वातावरण देने की तकनीक इसमें निहित है। संरक्षित खेती में प्लास्टिक के उपयोग द्वारा या कांच का घर बनाकर अधिक मूल्य देने वाली या अल्प प्रचलित सब्जियों को उगाकर इनका उत्पादन एवं उत्पादकता ज्यादा प्राप्त करके आय को

भिन्न प्रकार के ग्रीनहाउस/पॉलीहाउस

*सहायक प्राध्यापक, सब्जी विज्ञान विभाग

ट्रेंच तकनीक

यह तकनीक बहुत पुरानी है एवं सस्ती भी है। ट्रेंच तकनीक द्वारा सब्जियों का उत्पादन अधिक ठंडे प्रदेशों में किया जाता है। इस विधि में चार कक्ष जमीन के अंदर बनाये जाते हैं। प्रत्येक कक्ष का आकार 6×4×1.5 मीटर होता है। जमीन की सतह को पॉलीथीन की चादर से ढक देते हैं, ताकि इनको सुरक्षित रखा जा सके। इसके निर्माण के लिए अधिक विशेषज्ञता की आवश्यकता नहीं होती है। इसका रखरखाव भी बहुत सरल है। इसके निर्माण में लागत बहुत कम लगती है। संरक्षित खेती में यह विधि बहुत सस्ती एवं टिकाऊ है। इस तकनीक द्वारा निर्मित कक्ष में ऊर्जा एवं ताप की खपत बहुत कम होती है। तेज हवाएं इसको किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुंचाती हैं, जिसके फलस्वरूप इसकी पॉलीथीन अधिक समय तक चलती है। यह संरक्षित संरचना ठंडे क्षेत्रों के लिए अनुमोदित की गई है। इस ट्रेंच संरचना के द्वारा सब्जियों की पौध अगेती एवं पहले तैयार हो जाती है। इसके द्वारा किसानों को पौधशाला से ही पर्याप्त आय हो जाती है।

दोगुना किया जाता है। बदलते परिवेश, बढ़ती आबादी, घटते संसाधन, सिमटती भूमि के कारण भारत अपनी अपार जनसंख्या के उत्तम स्वास्थ्य के लिए 300 ग्राम गुणवत्तायुक्त व रसायनों की विषाक्तता से मुक्त सब्जियां प्रतिदिन उपलब्ध करवाने में असमर्थ है। विभिन्न प्रकार के कारक (बायोटिक एवं एबायोटिक) से प्रभावित साग-सब्जियां लम्बी अवधि तक (वर्षभर) आवश्यकतानुसार उत्पादन देने में असमर्थ होती हैं। इसलिए गुणवत्तायुक्त, आवश्यक मात्रा में सब्जियों एवं फलों की पैदावार बढ़ाने के लिए आज संरक्षित खेती करना अत्यन्त आवश्यक है।

पलवार

विपरीत मौसम में भी उपयोगी संरक्षित खेती

संरक्षित खेती के लाभ

- बेमौसम में सब्जियां एवं फूल उगाकर भरपूर लाभ।
- गुणवत्तायुक्त उत्पादन किया जा सकता है। गुणवत्ता के आधार पर पॉलीहाउस में उगने वाली सब्जियों एवं फूलों का आकार सुडौल, नियमित, आदर्श प्रकृति का तथा एक समान होते हैं। इससे ग्रेडिंग व पैकिंग में काफी सुविधा होती है। इसके साथ-साथ उत्पादों के रंग में ज्यादा चमक व आकर्षण होता है।
- संरक्षित खेती में सब्जी एवं फूल उगाकर विभिन्न प्रकार के बायोटिक (रोगों एवं कीड़े-मकोड़े) एवं एबायोटिक (वातावरणीय कारक जैसे वर्षा, तेज धूप, प्रकाश अतिवृष्टि इत्यादि) कारकों से फसल को बचाया जा सकता है। यह खुले वातावरण में संभव नहीं है।
- वर्षभर (लंबे समय तक) भरपूर पैदावार प्राप्त की जा सकती है।
- सामान्य की अपेक्षा 5-10 गुना अधिक सब्जियों एवं फूलों की पैदावार प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक पैदावार मिल सकती है।
- गुणवत्तायुक्त रसायनों के अवशेष से मुक्त सब्जियां एवं फूल उत्पादित करने का एकमात्र विकल्प है।
- उच्च मानक की सब्जियों एवं फूलों की खेती करके अधिक आमदनी प्राप्त की जा सकती है।
- पौधों के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण 24 घंटे उपलब्ध कराया जा सकता है।
- लागत का सही प्रयोग एवं बचत (पानी की 30-70 प्रतिशत बचत एवं उर्वरक का 40-60 प्रतिशत) का उपयुक्त माध्यम है।
- पॉलीहाउस तकनीक का प्रयोग नर्सरी में पौद पैदा करने में भी कर सकते हैं। सब्जियों एवं फूलों की नर्सरी से पौधों को बेचकर आय बढ़ा सकते हैं।
- आर्थिक दृष्टि से वही फसलें उगाई जानी चाहिए, जिनमें कम समय में ज्यादा से ज्यादा आय अर्जित की जा सके।
- भंडारण क्षमता पारंपरिक उत्पादों की अपेक्षा अधिक होती है। विशेषज्ञों के अनुसार सुडौल छिलका होने से इन फसलों के उत्पाद में संक्रमण भी कम होता है।
- किसान, जैविक तकनीक का प्रयोग करके अपने उत्पाद को अधिक मूल्य पर बेचकर आय को बढ़ा सकते हैं।

संरक्षित खेती में पौधों की बढ़वार के लिए उपयुक्त वातावरण, वर्षभर उत्पादन, निर्यात योग्य उत्पादन, प्रति इकाई क्षेत्र में अत्यधिक उत्पादन, पौध लगाने के लिए उत्तम व्यवस्था,

क्या है संरक्षित खेती

संरक्षित वातावरण में खेती की तकनीक 200 वर्षों से अधिक पुरानी है एवं इसका प्रयोग यूरोप में बहुतायत से होता आ रहा है। द्वितीय विश्व युद्ध के समय से इस तकनीक का प्रयोग हो रहा है। युद्ध के समय ग्रीनहाउस तकनीक का उद्‌भव हुआ था। वर्तमान में 90 प्रतिशत नये ग्रीनहाउस का निर्माण अल्ट्रा वायलेट स्टेबिलाइज्ड पॉलीथीन की चादर से किया जाता है। भारत में यह तकनीकी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है। पर्वतीय कृषि की विधि मैदानी क्षेत्रों से अलग होती है, जिसका मुख्य कारण वातावरण के साथ-साथ अन्य कारक का अलग होना होता है। इसी को ध्यान में रखकर पर्वतीय क्षेत्रों में पॉलीहाउस की तकनीक को अपनाया गया है। इसमें तापमान, आर्द्रता, सूर्य का प्रकाश एवं हवा का आगमन फसलों की आवश्यकता अनुसार परिवर्तन करके फसलों की उत्पादकता के साथ-साथ गुणवत्ता भी बढ़ा सकते हैं। इस प्रकार इस तकनीकी का उपयोग करके वर्षभर बेमौसमी सब्जियों का उत्पादन आसानी से कर सकते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में सर्दियों के मौसम में तापमान इतना कम हो जाता है कि पौधों की बढ़वार रुक जाती है। इन्हीं पौधों को अगर संरक्षित वातावरण में उगाया जाता है तो इसमें पौधों की बढ़वार संतोषजनक रहती है। इस प्रकार यह तकनीक पर्वतीय कृषि विकास को अधिक मजबूत बनाने में कारगर सिद्ध हो रही है।

पॉलीहाउस में बेमौसमी सब्जियां

ट्रेंच तकनीक में जल्दी तैयार होती है सब्जियों की पौध

सारणी-1 ट्रेंच तकनीक द्वारा उत्पादन का कार्यकाल

ऋतु	सब्जियां	अंतराल
सर्दी	पालक	15 जनवरी से 15 अप्रैल
पौधशाला में पौधे तैयार करना	सब्जियां एवं एकवर्षीय फूल	1 अप्रैल से 1 मई
सब्जियां	कद्दूवर्गीय सब्जियां, टमाटर, पालक	जून से नवम्बर

सारणी 2. लो-टनल द्वारा उत्पादन का कार्यकाल

ऋतु	सब्जियां	अंतराल
सर्दी	लहसुन	-
पौधशाला में पौधे तैयार करना	सब्जियां	15 अप्रैल से 15 मई
सब्जियां	कद्दूवर्गीय	जुलाई से नवम्बर

सारणी 3. चाइनीज टाइप पॉलीहाउस में उत्पादन का कार्यकाल

ऋतु	सब्जियां	अंतराल
सर्दी	पालक, पत्तागोभी, चायनीज कैबेज, लेट्यूस, केला	15 दिसम्बर से 15 अप्रैल
पौधशाला में पौधे तैयार करना	सब्जियां एवं वार्षिक फूल	1 अप्रैल से 1 मई
सब्जियां	रंगीन शिमला मिर्च (लाल, पीली, नारंगी)	मई से नवम्बर

कीट-रोग तथा खरपतवार का उचित प्रबंध आदि सम्मिलित होते हैं।

पॉलीहाउस की योजना एवं निर्माण

पॉलीहाउस का निर्माण करने से पूर्व निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

बढ़ता प्रचलन पॉलीहाउस का

- इस बात का निर्णय कर लें कि कौन से पौधे इसमें उगाने हैं, वर्ष में पॉलीहाउस का प्रयोग कब करना है एवं उत्पादित फसलों को कहां पर बेचेंगे।
- यह भी चयन करेंगे कि किस प्रारूप का पॉलीहाउस बनाना है।
- स्थान का चयन करना भी संरक्षित खेती का एक मुख्य पहलू है। छायायुक्त स्थान की अपेक्षा अच्छी धूप वाले क्षेत्र का चुनाव करें। ठंडे बर्फीले क्षेत्रों में ऐसी जगह का चयन करें जिसमें पॉलीहाउस की उत्तर दिशा की तरफ घर की दीवार हो (चायनीज टाईप पॉलीहाउस) जो कि सौर ऊर्जा को दिन में संरक्षित करके रात को प्रेषित करे।
- पॉलीहाउस कितने क्षेत्र में बनाना है, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि उसमें कितनी मात्रा में फसल उगानी है।

- ढकने के लिए पराबैंगनी किरण स्थायीकृत शीट का चयन करें।
- निर्माण सामग्री का चयन करके हूपस बनाएं तथा उचित दूरी पर सीमेंट तथा रेत का मिश्रण बनाकर दबाकर रिज लाइन के साथ बांध दें।
- आखिर में प्रयुक्त होने वाली फ्रेम को हूपस के साथ कस कर बांध दें। इसके बाद सीमेंट के साथ भूमि में गाड़ दें।
- इसकी संरचना को परख लें तथा नोकीले जोड़ को समतल करें एवं प्लास्टिक शीट से ढक दें।
- कवरिंग शीट को कसकर फ्रेम के आखिर में पेंच तथा स्ट्रिप से बांध दें ताकि यह हवा से क्षतिग्रस्त न हो।
- बची हुई शीट को जमीन में दबा दें।
- पॉलीहाउस के ऊपर छायादार जाली के सही संचालन के लिए पहली और आखिरी छोर पर मोटी प्लास्टिक शीट या रिबन का प्रयोग करें।
- सामान्यतया पॉलीहाउस पूर्व दिशा में बनाएं, परन्तु अधिक हवा वाले क्षेत्रों में पॉलीहाउस हवा की दिशा के समानान्तर बनाएं।
- आदर्श पॉलीहाउस का निर्माण करें जिसमें दोहरा दरवाजा, साइड वेन्टीलेशन, पर्याप्त टॉप वेन्टीलेशन, टपक विधि द्वारा सिंचाई, फॉगर या मिस्टर, 50 मैश यू.वी. स्टैब्लाइज्ड नाईलॉन की जाली व बाहर या अंदर से 50 प्रतिशत यू.वी. स्टैब्लाइज्ड छायादार जाले आदि घटक होते हैं। यदि किसान उपरोक्त घटकों का प्रयोग पॉलीहाउस निर्माण में सुनिश्चित करें तो अधिकतर समस्याओं का निदान आसानी से कर सकते हैं।

संरक्षित खेती के अंतर्गत विभिन्न संरचना

संरक्षित खेती के अंतर्गत वातावरण को नियंत्रित करने वाले कारक के आधार पर संरक्षित वातावरण कई प्रकार के होते हैं, जिनका विस्तृत वर्णन निम्नलिखित है:

ग्रीनहाउस/पॉलीहाउस (फाइटोटॉनिक प्रकार)

इस प्रकार के ग्रीनहाउस में विभिन्न वातावरणीय कारक जैसे तापमान, आर्द्रता, वायु संचार, प्रकाश इत्यादि को नियंत्रित करने के लिए स्वचालित उपकरण लगे होते हैं। इनका नियंत्रण कम्प्यूटर द्वारा किया जाता है। इसके अलावा इसमें उगाये गये पौधों की बढ़वार एवं फूलने एवं फलने की कार्यिकी को नापने के लिए भी यंत्र लगे रहते हैं। इस तरह के पॉलीहाउस बहुत महंगे होते हैं। अत: इसमें निर्यात के लिए उगाई जाने वाली फसलों जैसे अल्प प्रचलित एवं कीमती सब्जियों एवं फूलों को ही उगाया जाता है ताकि किसानों की कुल लागत तुलना में अच्छी आय प्राप्त हो सके। यह संरक्षित विधि अपेक्षाकृत अधिक महंगी होती है परन्तु इसमें कुछ बातें ध्यान में रखें तो निश्चित रूप से ही थोड़े समय बाद आय बढ़ने लगती है। कुछ समय बाद किसान की लागत निकल आती है एवं समय बीतने के साथ आय भी बढ़ने लगती है।

इजरायली टाइप पॉलीहाउस

इस प्रकार के पॉलीहाउस को साधारण जी.आई. पाइप के ऊपर अल्ट्रावायलेट स्टेबिलाइज्ड पॉलीथीन (80 गज) की चादर से बनाया जाता है। वायुसंचार के लिए एग्जास्ट फैन लगाया जाता है। इसके साथ ही पैड एवं फैन सिस्टम का भी प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के पॉलीहाउस हमारे देश में जाड़े

की सब्जियों को उगाने के लिए उपयुक्त हैं। इसमें तापमान 5-7^0 सेल्सियस तक नियंत्रित किया जा सकता है। शेडनेट हाउस-इस प्रकार के ढांचे का प्रयोग अधिक तापमान को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है। इसमें ग्रीष्म ऋतु में टमाटर और शिमला मिर्च की खेती करके किसान बेमौसमी सब्जियां एवं फूल उगाकर अपनी आय दोगुनी कर सकते हैं।

पलवार (पॉलीथीन मल्च)

खेत में पॉलीथीन का प्रयोग पलवार के रूप में करते हैं। तापमान नियंत्रित करने के साथ, जमीन की सतह से पानी को उड़ने से बचाने (वाष्पोत्सर्जन), खरपतवार नियंत्रण, कीड़े-मकोड़ों से बचाव और पौधों को मृदा में पाये जाने वाले जीवाणु रोगों से बचाया जाता है। खेत में पलवार के प्रयोग से किसान अपनी लागत में कमी ला सकते हैं एवं गुणवत्ता के साथ उपज बढ़ाकर अपनी आय भी बढ़ा सकते हैं।

चायनीज टाइप पॉलीहाउस

चायनीज टाईप पॉलीहाउस का आकार 100×20 फीट होता है। इस प्रकार के पॉलीहाउस का व्यावसायिक स्तर पर उपयोग मुख्य रूप से लद्दाख क्षेत्र में किया जाता है। यह पॉलीहाउस जाड़े के महीने में सब्जी उत्पादन के लिए उपयुक्त है। जाड़े के मौसम में इस तरह के पॉलीहाउस के पालक की 20 कटिंग ले सकते हैं। इसके अलावा पत्तागोभी के हेड 800-2000 ग्राम भार के फरवरी के अंत तक तैयार कर सकते हैं। शिमला मिर्च की भी खेती कर सकते हैं। इस प्रकार के पॉलीहाउस में सब्जियों की पौध भी तैयार हो सकती है। परिणामस्वरूप किसान अपनी आय में बढ़ोतरी कर सकते हैं। सारणी-3 में इस प्रकार की संरचना में खेती करने के समय का वर्णन दिया है।

प्लास्टिक लो-टनल तकनीक

प्लास्टिक लो-टनल तकनीक के द्वारा ऑफ सीजन सब्जियों का उत्पादन करके किसान बाजार में वर्षभर सब्जियों को उपलब्ध कर सकते हैं। इस प्रकार सब्जियों को अच्छी कीमत पर बेचकर अच्छी आय प्राप्त कर सकते हैं। यह तकनीक सस्ती एवं कम खर्चीली है। लो-टनल के द्वारा खेती करने के बहुत लाभ हैं-जैसे प्रतिकूल वातावरण में यह फसल को सुरक्षा प्रदान करता है एवं साथ ही इन फसलों को 20-25 दिनों पहले तैयार होने में मदद करता है। फलस्वरूप किसान की फसल मुख्य समय से पहले बाजार में उपलब्ध हो जाती है और उचित मूल्य मिलता है। लो-टनल तकनीक द्वारा पौधशाला में पौधे स्वस्थ एवं अगेती (पहले) तैयार हो जाते हैं। इस विधि द्वारा किसानों ने समर स्क्वैश में उत्पादन दोगुना किया है एवं अधिक लाभ कमाया है। ■

पशुओं के वर्षाकालीन संक्रामक रोगों की रोकथाम

अरविन्द कुमार त्रिपाठी
पशु औषधि विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा संकाय
पंडित दीनदयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय एवं गौ अनुसंधान संस्थान, (दुवासु), मथुरा (उत्तर प्रदेश)

“ पशुपालकों को पशु स्वास्थ्य से संबंधित जानकारियां न होने के कारण उन्हें अक्सर बड़े पैमाने पर नुकसान उठाना पड़ता है। देश में पशु चिकित्सा सेवाओं की समुचित व्यवस्था के अभाव के अलावा जागरूकता नहीं होने से भी यह स्थिति बन जाती है। प्रस्तुत लेख में बरसात के दिनों में पशुओं में होने वाले सामान्य रोगों के लक्षण एवं उनसे बचाव के तौर-तरीकों पर अत्यंत सरल भाषा में जानकारियां देने का प्रयास किया गया है। ”

खुरपका-मुंहपका रोग

यह एक विषाणुजनित रोग है, जो फटे खुर वाले पशुओं को ग्रसित करता है। इसकी चपेट में सामान्यत: गौपशु, भैंस, भेड़, बकरी एवं शूकर आते हैं। यह छूत का रोग है।

लक्षण

प्रभावित होने वाले पशुओं में पैर पटकना, खुर में सूजन, लंगड़ाना, अल्प अवधि का बुखार, खुर में घाव होना एवं घावों में कीड़ा लग जाना, कभी-कभी खुर का पैर से अलग हो जाना, मुंह से लार गिरना जैसे लक्षण पाए जाते हैं। जीभ, मसूड़े, ओष्ठ आदि पर छाले पड़ जाते हैं। ये बाद में फूटकर मिल जाते हैं। इसके अलावा प्रजनन क्षमता और बैलों की कार्य क्षमता में कमी भी आती है। बछड़ों में यह रोग घातक रूप ले लेता है, जिससे उनकी अकाल मृत्यु हो जाती है। प्रभावित पशु स्वस्थ होने के उपरान्त भी महीनों हांफते रहते हैं। मादा पशुओं की प्रजनन क्षमता वर्षों तक प्रभावित रहती है। शरीर के रोयें तथा खुर बहुत बढ़ जाते हैं। गर्भवती मादा पशुओं में गर्भपात की आशंका बनी रहती है।

उपचार

- रोगग्रस्त पशु के पैर को नीम का काढ़ा बनाकर दिन में दो से तीन बार धोना चाहिए। प्रभावित पैरों को फिनाइलयुक्त पानी से दिन में दो-तीन बार धोकर मक्खी को दूर रखने वाली मलहम का प्रयोग करना चाहिए।
- रोगी पशु के मुंह और खुर को फिटकरी के घोल (10 ग्राम फिटकरी को 1 लीटर पानी में) अथवा लाल दवा (1 ग्राम को 1 लीटर पानी में) के घोल से दिन में 3-4 बार धोना चाहिए।

बाह्य परजीवी

मुख्यतया किलनियों, जूं, मक्खियों व माइट जैसे बाह्य परजीवियों के द्वारा भी कई प्रकार के रोग होते हैं। ये पशु का खून चूसते हैं जिससे खून की कमी व अन्य रोगों के हो जाने के कारण पशु उत्पादकता पर कुप्रभाव पड़ता है। बाह्य परजीवियों से ग्रसित पशु की खाल की कीमत भी बाजार में कम मिलती है। कभी-कभी पशु के शरीर में घाव भी हो जाते हैं, जिनमें मक्खियां अंडे दे देती हैं और कीड़े पड़ जाते हैं। घाव कई दिनों तक ठीक न हो पाने के कारण पशु के उपचार पर खर्च ज्यादा होता है और उत्पादकता भी प्रभावित होती है।

बचाव के उपाय

इन परजीवियों से बचाव के लिए वर्ष में कम से कम दो बार परजीवीनाशक दवाओं जैसे-साइपरमैथ्रिन, डेल्टामैथ्रिन आदि से पशुओं को नहलाना चाहिए। वर्षा ऋतु से पहले एवं बाद में दो बार इन परजीवीनाशक दवाओं का प्रयोग अत्यन्त प्रभावी होता है। साइपरमैथ्रिन या डेल्टामैथ्रिन के 0.1 से 0.4 प्रतिशत अर्थात एक लीटर पानी में 1 से 4 मिलीलीटर दवा मिलाकर घोल बना लें। इस घोल से पशु को नहलाना चाहिए। नहलाने से पूर्व पशुओं को पानी अवश्य पिला लेना चाहिए। ये दवायें जहरीली होती हैं अत: इनका उपयोग सतर्कता व सावधानी से करना चाहिए पशु चिकित्सक से पूर्व में सलाह लेने से किसी भी प्रकार की हानि से बचा जा सकता है। पशुशाला की प्रत्येक दिन साफ-सफाई करें और उसकी सतह पर चूने का छिड़काव करें। पुरानी बिछावन यदि हो तो उसे बदलते रहें।

- पशु के मुंह में दिन में 2-3 बार बोरोग्लिसरिन का लेप अवश्य करना चाहिए।
- खाने के लिए चावल का मांड, दलिया, गुड़ के साथ देना चाहिए। बारीक कुट्टी एवं अन्य चारा भी दिया जा सकता है।
- एंटीबायोटिक दवाओं का प्रयोग रोग के प्रभाव को कुछ हद तक कम कर देता है।

पशुओं में मुंहपका रोग

गलघोंटू

यह रोग हिमोरेजिक सेप्टीसिमिया के नाम से जाना जाता है। यह पास्चुरेला मल्टीसिडा नामक जीवाणु से होता है। यह रोग पशुओं में बरसात में होता है तथा भैंसों में इस रोग का प्रकोप अधिक होता है। अति तीव्र ज्वर के साथ प्रारंभ होने वाला गाय तथा भैंस आदि पशुओं को प्रभावित करने वाला जीवाणुजनित यह आम पशु रोग है, जो महामारी के रूप में फैलता है। किसी भी उम्र के पशु किसी भी मौसम में इससे ग्रस्त हो सकते हैं। बरसात के दिनों में इस रोग के फैलने की आशंका अधिक रहती है।

लक्षण

एकाएक सुस्ती, भूख तथा जुगाली बंद, तीव्र ज्वर (106-108^0 फॉरेनहाइट), तेज परन्तु धीमी सांस, मुंह से लार टपकना, आंख तथा अन्य श्लेष्मा झिल्लियों में लालीपन, आंसुओं का स्राव, सिर तथा गर्दन में दर्दयुक्त सूजन, जीभ बाहर निकालकर सांस लेना, सांस में घरघराहट, बेचैनी तथा अंत में मृत्यु इस रोग के मुख्य लक्षण हैं।

मृत्यु दर: 70-100 प्रतिशत।

उपचार

रोग के शुरूआती दौर में तीव्रता तथा पशु की स्थिति के अनुसार उचित एंटीबायोटिक्स के साथ सपोर्टिंग औषधि द्वारा इलाज किए जाने पर संतोषजनक परिणाम मिलते हैं। धुआं करने की आम परिपाटी को रोकना चाहिए। इससे सांस लेने में कठिनाई बढ़ जाती है। गर्म बालू अथवा अन्य धुआंरहित सामग्री की पोटली बनाकर सूजन वाले भाग पर सेंकना चाहिए। पशु को ज्यादा छेड़छाड़ से बचाना चाहिए।

रोकथाम/बचाव

पशुशाला को साफ रखें। समय पर टीका लगवाएं। रोग से ग्रसित पशुओं को अलग रखें।

- ए.एस. आईल एड्ज्यूवेट वैक्सीन 6 माह के ऊपर की आयु के सभी पशुओं में लगवाना चाहिए। एच.एस. का टीकाकरण ही इस रोग से पशु की रक्षा कर सकता है।
- वर्षा ऋतु से पहले प्रतिवर्ष यह टीका लगवा लेना चाहिए।
- यह छूत का रोग है। रोगी पशुओं को तुरंत स्वस्थ पशुओं से अलग कर दें। उन्हें अलग से पानी व चारा देना चाहिए।
- मृत पशु को गहरा गड्ढा खोदकर गाड़ दें।

पशुओं में खुरपका रोग

सावधानी

प्रभावित पशु को साफ एवं हवादार स्थान पर अन्य स्वस्थ पशुओं से दूर रखना चाहिए। पशुओं की देखरेख करने वाले व्यक्ति को भी हाथ-पांव अच्छी तरह साफ करके ही दूसरे पशुओं के संपर्क में जाना चाहिए। प्रभावित पशु के मुंह से गिरने वाली लार एवं पैर के घाव के संसर्ग में आने वाली वस्तुओं, पुआल, भूसा, घास आदि को जला देना चाहिए या जमीन में गड्ढा खोदकर चूने के साथ गाड़ दिया जाना चाहिए

टीकाकरण

'इलाज से बेहतर है बचाव' के सिद्धांत पर छः माह से ऊपर के स्वस्थ पशुओं को खुरपका-मुंहपका रोग के विरूद्ध टीकाकरण अवश्य करवाना चाहिए। इसके बाद छः माह के अंतराल पर टीकाकरण करवाते रहना चाहिए।

थनैला रोग

थनैला रोग, पशुओं के थन के रोग को कहते हैं। यह रोग सामान्यतः गाय, भैंस, बकरी एवं सूअर समेत तकरीबन सभी ऐसे पशुओं में पाया जाता है, जो अपने बच्चों को दूध पिलाते हैं। प्राचीनकाल से यह रोग दूध देने वाले पशुओं एवं उनके पशुपालकों के लिए चिंता का विषय बना हुआ है। पशुधन विकास की पूर्ण सफलता में अकेले यह रोग बाधक है। इस रोग से पूरे देश में प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये का नुकसान होता है, जो अतंतः पशुपालकों की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करता है। थनैला रोग पशुओं में कई प्रकार के जीवाणु, विषाणु, फफूंद एवं यीस्ट तथा मोल्ड के संक्रमण से होता है। इसके अलावा चोट तथा मौसमी प्रतिकूलताओं के कारण भी थनैला हो जाता है।

लक्षण/जांच

थनैला रोग से प्रभावित पशुओं में रोग के प्रारंभ में थन गर्म हो जाता है तथा उसमें दर्द एवं सूजन हो जाती है। शारीरिक तापमान भी बढ़ जाता है। लक्षण प्रकट होते ही दूध की गुणवत्ता प्रभावित होती है। दूध में छटका, खून एवं पस की अधिकता हो जाती हैं। पशु खाना-पीना छोड़ देता है एवं अरुचि से ग्रसित हो जाता है।

कभी-कभी थनैला रोग के लक्षण प्रकट नहीं होते हैं। परन्तु दूध की कमी, दूध की गुणवत्ता में कमी एवं सूखने के पश्चात (ड्राई काउ) थन की आंशिक या पूर्णरूपेण क्षति हो जाती है, जो अगले बियान के प्रारंभ में प्रकट होती है। इस प्रकार अदृश्य रोग को समय रहते पहचानने के लिए निम्न प्रकार के उपाय किए जा सकते हैं:

- पी.एच. पेपर द्वारा दूध की समय-समय पर जांच या संदेह की स्थिति में विस्तृत जांच।
- कैलिफोर्निया मॉस्टाईटिस सोल्यूशन के माध्यम से जांच।
- संदेह की स्थिति में दूध कल्चर एवं सेंसिटिविटी जांच।

रोकथाम/बचाव

थनैला रोग की रोकथाम प्रभावी ढंग से करने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है:

- दुधारू पशुओं के रहने के स्थान की नियमित सफाई जरूरी है। फिनाइल

सारणी: गोवंशीय पशुओं में टीकाकरण, कृमिनाशन एवं सर्वांग नहलाने (डिपिंग) के लिए वार्षिक चक्र

कार्य विवरण	उपचार की विधि	रक्षक दवा लगाने के समय पशु की आयु सीमा	सुरक्षा अवधि
टीकाकरण			
(क) एफ.एम.डी.	पशु की खाल के नीचे	3 माह से ऊपर के पशु	6 माह तक
(ख) एच.एस.	पशु की खाल के नीचे अथवा	6 माह से ऊपर के पशु	6 माह तक
(ग) बी.क्यू.	शरीर के मांस वाले भाग में उत्पादक कम्पनी के निर्देशानुसार	6 माह से ऊपर के पशु	माह तक
कृमिनाशन पेट के कीड़ों का नाशक	मानसून (वर्षा ऋतु) शुरू होने से पहले (जून-जुलाई) व बाद में (अक्टूबर) में पिलायें	सभी आयु वर्ग के पशु	वर्ष में दो बार प्रथम व द्वितीय खुराक देने से पेट के कीड़ों से पशु को बचाया जा सकता है।
सर्वांग स्नान (डिपिंग जुओं, किलनी, माइट आदि से बचाव के लिए	प्रथम बार माह जुलाई एवं दूसरी बार अक्टूबर में नहलायें	सभी आयु वर्ग के पशु, नवजात पशुओं को छोड़कर	वर्ष में दो बार डिपिंग कराने से पशु को बाह्य परजीवियों के प्रकोप से बचाया जा सकता है।

पशुपालक उपरोक्त सारणी के अनुसार स्वास्थ्य प्रबंधन करके अपने पशुओं को स्वस्थ एव सुरक्षित रख सकते हैं तथा भारी आर्थिक हानि से बच सकते हैं।

के घोल तथा अमोनिया कम्पाउंड का छिड़काव करना चाहिए।

- दूध दुहने के पश्चात थन की यथोचित सफाई के लिए लाल पोटाश या सेवलोन का प्रयोग किया जा सकता है।
- दुधारू पशुओं में दूध बन्द होने की स्थिति में ड्राई थेरेपी द्वारा उचित इलाज कराया जाना चाहिए।
- थनैला होने पर तुरंत पशु चिकित्सक की सलाह से उचित ईलाज कराया जाये।
- दूध की दुहाई निश्चित अंतराल पर की जाये।
- इसके अलावा पशुओं का उचित रखरखाव और थन की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाली औषधियों का प्रयोग करना श्रेयस्कर है।

लंगड़िया (बी.क्यू)

यह रोग गाय-भैंसों में क्लास्ट्रीडियम चौबाई नामक जीवाणु के कारण होता है। इसका प्रकोप बरसात के समय अधिक होता है। यह विशेषकर छोटी आयु, दो वर्ष से कम उम्र के पशुओं में होता है। मुख्य रूप से यह रोग लंगड़ी रोग के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें साधारण ज्वर तथा मांसल भाग का दर्दयुक्त सूजन एवं लंगड़ापन प्रमुख लक्षण हैं। प्रौढ़ तथा स्वस्थ पशु ज्यादा प्रभावित होते हैं।

लक्षण

हल्का ज्वर (105^0 फॉरेनहाइट तक), सुस्ती तथा बैठे रहने की प्रवृति/रीढ़ अथवा गर्दन

स्वस्थ पशु, ज्यादा लाभ

अथवा दोनों जगह में झुकाव के साथ पशु खड़ा रहता है। बाद में पशु बैठ जाता है अथवा सोया रहता है। शरीर के किसी भी मांसल भाग में दर्दयुक्त गर्म सूजन पायी जाती है। पैर, पीठ तथा नितंब पर इस प्रकार की सूजन ज्यादा देखी जाती है। बाद में यह सूजन ठंडा तथा दर्दहीन होकर समाप्त हो जाता है। इस भाग को दबाने पर कुचकुचाहट की आवाज होती है, मानो पुराने कागज को हथेलियों के बीच कुचला जा रहा हो।

मृत्यु दरः 80-100 प्रतिशत।

उपचार

पेनिसिलीन, सल्फोनामाइड, टेट्रासाइक्लीन ग्रुप के एंटीबायोटिक्स का सपोर्टिव औषधि के साथ उपयोग, रोग की तीव्रता तथा पशु की स्थिति के अनुसार लाभकारी है। सूजन वाले भाग का सेंक अलाभकारी है। सूजन वाले भाग में चीरा लगाकर 2 प्रतिशत हाइड्रोजन पेरोक्साइड तथा पोटेशियम परैंगनेट से ड्रेसिंग किया जाना लाभकारी है।

रोकथाम/बचाव

- पशुशाला को साफ रखें
- समय पर टीका लगवायें
- रोग से ग्रसित पशुओं को अलग रखें

पशुओं में लीवर-फ्लूक

यह एक परजीवी रोग है। यह रोग पशुओं में एक प्रकार के परजीवी (फैसिओला) से होता है। ये अपने जीवन का कुछ समय नदी, तलाब, पोखर आदि में पाये जाने वाले घोंघा में व्यतीत करते हैं और शेष समय पशुओं के शरीर (यकृत) में। घोंघा से निकलकर इस परजीवी के लार्वा नदी, पोखर, तालाब के किनारे वाली घास की पत्तियों पर लटके रहते हैं। पशु जब इस घास के संपर्क में आते हैं, तो ये परजीवी पशुओं के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। शरीर के विभिन्न आंतरिक अंगों में भ्रमण करते हुए अंततः ये अपना स्थान पशु के यकृत तथा पित्त की थैली में बना लेते हैं। पशुओं का यकृत जैसे-जैसे प्रभावित होता है, वैसे-वैसे रोग के लक्षण प्रकट होते जाते हैं। रोग की तीव्रता यकृत के नुकसान की व्यापकता पर निर्भर करती है।

लक्षण

भूख में कमी का होना शरीर का क्षीण होते जाना, कभी-कभी बदबूदार बुलबुले के साथ पतला दस्त, घेघ फूल जाना, उठने में कठिनाई, उत्पादन क्षमता में कमी होना। समय पर उचित इलाज न होने पर पशु की मृत्यु भी हो सकती है।

उपचार

शुरू से ही सतर्कता बरतने पर पशु आसानी से ठीक हो जाते हैं। पशु चिकित्सक के परामर्श से रोगग्रस्त पशु का इलाज करायें। कृमिनाशक दवा विशेषकर ऑक्सीक्लोजानाइड (1 ग्राम प्रति 100 कि.ग्रा. पशु वजन के लिए) का प्रयोग करना चाहिए। दवा सुबह भूखे/खाली पेट खिलायी/पिलायी जानी चाहिए। इस दवा का व्यवहार पशुओं के गर्भावस्था के दौरान भी बिना किसी विपरीत प्रभाव के किया जा सकता है। साल में दो बार, प्रत्येक बार में 15 दिनों के अंतर पर दो खुराक दवा का प्रयोग करना चाहिए। बाढ़ प्रभावित तथा जल जमाव वाले क्षेत्रों के पशुपालकों को इस रोग से अधिक सतर्क रहने की जरूरत है।

संक्रामक रोगों एवं परजीवियों से बचाव के लिए सारणी में टीकाकरण एवं सर्वांग स्नान की वार्षिक अवधि दी जा रही है, जिसका उपयोग कर पशुपालक किसी भी हानि से अपने पशुओं को सुरक्षित व स्वस्थ रख सकते हैं। ■

पशुओं में डेगनाला रोग

मुख्यतः यह रोग भैंस प्रजाति के पशुओं में होता है। गोवंश के पशु भी इस संक्रमण के शिकार होते हैं। इस रोग का निश्चित कारण अभी तक ज्ञात नहीं है, परन्तु डेगनाला एक फफूंदजनित रोग है।

लक्षण

इस रोग में पशुओं के कान, पूंछ एवं खुर सूखने लगते हैं और अंततः सड़ कर गिर जाते हैं। पशु भोजन करना बंद कर देता है एवं दिनों-दिन कमजोर होता जाता है। अधिक नमीयुक्त पुआल या भूसा खिलाने से यह रोग आमतौर पर पशुओं में होता है।

रोकथाम/बचाव

- पशुओं को फफूंदी लगा हुआ चारा-दाना एवं भूसा नहीं खिलायें।
- पुआल को पानी से धोकर खिलायें।
- पशुओं को स्वच्छ जगह पर रखें।
- नियमित रूप से मिनरल मिक्सचर दें।
- गोशालाओं में नियमित रूप से फिनाइल एवं चूने के पानी का छिड़काव करें।
- शरीर के संक्रमित भाग को नीम की पत्तियों को पानी में उबालकर उसी पानी से घाव को साफ करें। इसके बाद एंटीसेप्टिक मलहम लगाएं एवं अधिक समय तक क्रियाशील रहने वाले एंटीबायोटिक का प्रयोग करें।

स्वास्थ्य और समृद्धि के लिए जैविक खेती

हेमलता सैनी[1] और **मोती लाल मीणा**[2]

“रसायनों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग के कारण आज किसानों को प्रतिकूल प्रभावों का सामना करना पड़ रहा है। पंजाब का यदि उदाहरण देखें तो यहां के किसानों के लिए भूमि का उपजाऊपन अब केवल कीटनाशकों और उर्वरकों पर ही निर्भर रह गया है। ऐसे में बड़ा सवाल है कि किसानों की समस्याओं का हल कैसे खोजा जाए। इसका जवाब है जैविक खेती यानी ऑर्गेनिक फार्मिंग। स्पष्ट रूप से मानना है कि जैविक खेती किसानों के लिए समृद्धि का कारक है और साथ ही साथ यह मिट्टी के लिए भी फायदेमंद है।”

जैविक खेती और जैविक खाद्य पदार्थों का इस्तेमाल स्वास्थ्य के प्रति जागरुक होते समाज के हित में है। पिछले लगभग पांच दशकों के दौरान खेती में रसायनों और कीटनाशकों ने अपनी जड़ें गहराई तक जमा ली हैं। जैविक खाद्य, क्या सच में ही सही मायनों में जैविक है, कैसे और कौन सी संस्था जैविक खाद्य पदार्थों को तय करती है, इसके बाद उपभोक्ता कहीं जैविक के नाम पर ठगा तो नहीं जा रहा है। विश्व में जैविक खाद्य के बारे में इस तरह की बहस छिड़ी हुई है। जैविक खाद्य पदार्थों में भी कीटनाशकों के अवशेष पाए गए हैं।

हमारे खाद्य पदार्थों और खेती में जहरीले कीटनाशकों के लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए। हमें यह राष्ट्रीय संकल्प लेना होगा कि हमारी खेती पूरी तरह से जैविक पद्धति पर आधारित हो। रसायन आधारित खेती से अलग जैविक कृषि में प्राकृतिक उत्पादों का पुनर्चक्रीकरण किया जाता है। हरी खाद, जीवामृत और पंचगव्य वगैरह से मिट्टी की उर्वरक क्षमता में भी वृद्धि होती है। इसके साथ ही मिट्टी में नमी भी बढ़ती है। ये फसलों के लिए तो लाभदायक होती है, साथ ही सूखे की स्थिति से भी आसानी से निपटा जा सकता है। दिलचस्प तथ्य है कि स्वस्थ मिट्टी में जैव विविधता का भंडार भी होता है। आंकड़ों के अनुसार एक ग्राम मिट्टी में 30 हजार प्रोटोजोआ, 50 हजार कवक और 4 लाख फफूंद होते हैं। इससे अभिप्राय है कि मिट्टी में पाए जाने इन सूक्ष्मजीवों के कारण पौधों के प्राकृतिक विकास में मदद मिलती हैं। जैविक खेती में इन्हीं के द्वारा फसलें और खाद्य पदार्थ प्राप्त किए जाते हैं। रासायनिक खेती में इन

[1]सहायक प्राध्यापक (प्रसार शिक्षा), आनंद कृषि विश्वविद्यालय, आनंद (गुजरात); [2]वैज्ञानिक (कृषि प्रसार), भाकृअनुप-काजरी, कृषि विज्ञान केन्द्र, पाली-मारवाड़ (राजस्थान)

मृदा के लिए लाभकारी है जैविक खाद

सारणी 1. जैविक खाद और खलियों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश की मात्रा

क्र.स.	जैविक खाद	नाइट्रोजन (प्रतिशत)	फॉस्फोरस (प्रतिशत)	पोटाश (प्रतिशत)
1	गोबर की खाद	0.5-1.5	0.3-0.9	0.3-1.5
2	ग्रामीण कम्पोस्ट	0.5-1.0	0.4-0.8	0.8-1.2
3	शहरी कम्पोस्ट	0.7-2.0	0.9-3.0	1.0-2.0
4	करंज खली	3.8-4.0	0.8-0.9	1.0-1.2
5	नीम खली	4.9-5.1	1.0-1.2	1.3-1.5
6	अरंडी खली	4.1-4.3	1.6-1.8	1.1-1.3
7	मूंगफली की खली	7.1-7.3	1.3-1.9	1.1-1.3
8	नारियल खली	2.8-3.0	1.7-1.9	1.7-1.9
9	सरसों खली	4.6-4.8	1.6-1.8	1.3-1.3
10	तिल की खली	6.0-6.2	1.8-2.0	1.0-1.2

हरी खाद

हरी खाद के प्रयोग से मृदा में जैविक पदार्थ के अतिरिक्त नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त जीवों द्वारा रासायनिक प्रक्रिया में तीव्रता भी आती है तथा पोषक तत्वों का संरक्षण भी बढ़ जाता है। हरी खाद में पायी जाने वाली औसत नाइट्रोजन की मात्रा सारणी-3 में दर्शाई गयी है। इसके अतिरिक्त गिरिपुष्प *(गिलरिसीडिया)* एवं सूबबूल *(ल्यूकायना)* लगाकर उनके पत्तों का हरी खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है। *गिलरिसीडिया* की एक टन हरी पत्तियों में 30-40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 3.0-3.2 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 15-25 कि.ग्रा. पोटाश मिलता है।

ट्राइकोडर्मा

यह एक जैविक फफूंदनाशक है, जो आलू, हल्दी, अदरक, प्याज, लहसुन आदि फसलों के जड़ सड़न, तना गलन, झुलसा आदि रोग जो फफूंद से पनपते हैं, के प्रबंधन में काफी प्रभावी होता है। इसके साथ ही टमाटर एवं बैंगन के जीवाणु मुरझान रोग की रोकथाम के लिए भी यह उपयुक्त पाया गया है। इसका प्रयोग फसल बुआई के समय 2-4 ग्राम/कि.ग्रा. बीज उपचार हेतु पौधशाला में करना चाहिए या 1.5-2.0 कि.ग्रा. प्रति एकड़ खेत में अंतिम जुताई के समय 10-15 कि.ग्रा. सड़े गोबर की खाद में मिलाकर बिखेर देना चाहिए।

उत्पत्ति हुई है। हम सभी मृदा से जुड़े हुए हैं। प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में स्वस्थ मृदा से प्राप्त उपज को खाकर हम सभी स्वस्थ रहेंगे। जब मृदा रोगी होगी तो उपज भी वैसी ही प्राप्त होगी और परिणामस्वरूप लोगों को भी पूरा पोषण नहीं मिल पाएगा। दरअसल बंजर भूमि का कारण है मिट्टी में जैविक पदार्थों का वापस नहीं हो पाना। इसी का दंश आज हम देश में देख रहे हैं। हर साल एक बड़ा क्षेत्रफल बंजर हो रहा है। ह्यूमसयुक्त मृदा में लगभग 90 फीसदी तक पानी को सोखने की क्षमता होती है। स्वस्थ मृदा पानी और उपजाऊ तत्वों को अपने में सुरक्षित रखती है। देश में लगभग 13.5 लाख मीट्रिक टन जैविक खाद्य पदार्थों का उत्पादन वर्ष 2015-16 में हुआ। हमारे देश में 235 जैविक खाद्य उत्पाद निर्यातक है। वर्ष 2015-16 में 839 करोड़ रुपये के

सभी का क्षरण हो जाता है। लैटिन में मिट्टी को 'ह्यूमस' कहा जाता है यानी जीवित मृदा, इसी से ह्यूमन यानी मनुष्य शब्द की

जैविक विधि से उगाई गई मिर्च

सारणी 2. दलहनी फसलों द्वारा नाइट्रोजन का यौगिकीकरण

क्र.स.	फसल का नाम	नाइट्रोजन (कि.ग्रा.)
1	लोबिया	85-90
2	सोयाबीन	55-60
3	मटर	70-75
4	मूंग	60-65
5	अरहर	70-75
6	मूंगफली	40-45
7	बीन (राजमा)	35-40
8	मोठ	45-50
9	ग्वार	30-35

लोगों में तेजी से बढ़ रहा जैविक खेती के प्रति रूझान

फॉस्फोरस को घुलनशील बनाने वाले जैव उर्वरक

भारतीय मृदाओं में फॉस्फोरस का स्तर मध्यम से निम्न है। कुल मृदा फॉस्फोरस का 1/5 प्रतिशत भाग ही पौधे ग्रहण कर पाते हैं। शेष भाग अघुलनशील अवस्था में होता है। फसलों में उपयोग किये जाने वाले कुल उर्वरक का 30 प्रतिशत भाग फसल को प्राप्त होता है। शेष भाग रासायनिक क्रियाओं के द्वारा अघुलनशील हो जाता है। कुछ जीवाणु जैसे कि बैसिलस तथा स्यूडोमोनास, कवक जैसे कि पेनिसीलियम एवं एस्परजिलस मृदा फॉस्फोरस को घोलने के साथ-साथ फसल में दिये गये उर्वरक की उपयोग क्षमता को भी बढ़ाते हैं। इन जैव उर्वरकों के प्रयोग से 15-25 प्रतिशत फॉस्फोरस उर्वरकों के प्रयोग में बचत होती है।

सारणी 3 हरी खाद में नाइट्रोजन (प्रतिशत)

क्र.स.	फसल का नाम	वैज्ञानिक नाम	नाइट्रोजन (प्रतिशत)
1	ढैंचा	*सेस्बानिया एक्युलियाटा*	0.14-0.43
2	सनई	*क्रोटोलेरिया जन्सिया*	0.40-0.42
3	सेंजी	*मेलिलोअस आल्वा*	0.55-0.60
4	बरसीम	*ट्राइफोलियम अलेक्सनड्रिम*	0.44-.048
5	ग्वार	*सइनोमस जमजतंहवलोबी*	0.25-0.30
6	लोबिया	*विगना साइनेसीस*	0.45-0.50
7	मूंग	*विगना रेडियटा*	0.33-0.36

जैविक खाद्य पदार्थों का भारत ने निर्यात किया, जो एक अच्छा परिणाम है। देश में 5.70 लाख जैविक खेती करने वाले किसान है। इस प्रकार देखें तो भारत में 10 लाख हैक्टर भूमि पर जैविक खेती होती है, जिसमें से 50 फीसदी पर खाद्य पदार्थ की खेती होती है। 431 लाख हैक्टर जैविक कृषि भूमि विश्वभर में है। विश्व के 170 देशों में जैविक खेती को बढ़ावा देने के प्रयास चल रहे हैं। इसके फलस्वरूप 170 देशों की 431 लाख हैक्टर भूमि को जैविक प्रमाणिक भूमि के रूप में बदला जा चुका है। वर्ष 2015-16 तक लगभग 34 प्रतिशत दर से बढ़ा जैविक फल-सब्जियों का बाजार। भारत में 15 प्रतिशत की वृद्धि दर है जैविक डेरी पदार्थों के बाजार की।

देश में हरित क्रांति के परिणामस्वरूप खाद्यान्न फसलों के साथ ही सब्जियों की फसलों में भी उन्नत एवं अधिक उपज क्षमता वाली प्रजातियों का विकास हुआ है। इन प्रजातियों की समुचित वृद्धि एवं विकास के लिए पारंपरिक प्रजातियों की अपेक्षा अधिक मात्रा में पोषक तत्वों यानी नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश की आवश्यकता होती है और इन तत्वों की बाह्य स्रोतों जैसे-खाद एवं रासायनिक उर्वरकों से पूर्ति की जाती है। संकर प्रजातियों से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए उन्नत प्रजातियों की अपेक्षा अधिक मात्रा में खाद एवं उर्वरकों की आवश्यकता होती है। इसके परिणामस्वरूप रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग निरंतर बढ़ता गया। इनके अधिक मात्रा में प्रयोग करने से मृदा की भौतिक एवं रासायनिक संरचना पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उर्वरकों की मांग और बढ़ती कीमत तथा पूर्ति के बीच बढ़ते अंतर को ध्यान में रखते हुए मानव/पशु/मृदा स्वास्थ्य और समृद्धि के लिए जैविक कृषि तकनीक, भूमि की उर्वरता एवं फसलों की उत्पादकता को अधिक समय तक स्थिर बनाए रखने के साथ-साथ मृदा में द्वितीयक एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी भी नही होने देते हैं।

किसानों के लिए लाभकारी है जैविक खेती

जैविक खाद

जैविक खाद मृदा की भौतिक एवं रासायनिक संरचना तथा जैविक गुणों पर

लाभदायक प्रभाव डालती है। अत: मृदा में जैविक पदार्थों की पर्याप्त उपलब्धता के लिए जैविक खादों का प्रयोग अनिवार्य है। जैविक खादों तथा विभिन्न फसलों की खलियों में पाए जाने वाली पोषक तत्वों की मात्रा सारणी-1 में बताई गई है।

दलहनी फसल

मुख्यत: दलहनी फसलों को सब्जी एवं मसालों के साथ अंत: फसल के रूप में उगाने पर पौधों की वृद्धि काफी उत्साहजनक, उपज अधिक एवं गुणवत्तायुक्त होती है। दलहनी फसलें खेत में उगाने से वायुमंडलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण होता है। इसलिए इसका लाभ पौधों को प्राप्त होता है। दलहनी फसलों द्वारा नाइट्रोजन का यौगिकीकरण सारणी-2 में दर्शाया गया है।

फसल अवशेष

मृदा में फसलों के अवशेषों के प्रयोग से जैविक कार्बन में वृद्धि के साथ-साथ कई पोषक तत्वों की उपलब्धता में भी वृद्धि होती है तथा मृदा की भौतिक संरचना में भी सुधार होता है।

केंचुआ खाद

यह उच्च कोटि की संतुलित जैविक खाद है, जो केंचुओं द्वारा तैयार की जाती है। इसमें नाइट्रोजन 1.0-2.0 प्रतिशत, फॉस्फोरस 1.0-1.5 प्रतिशत तथा पोटाश 1.5-2.0 प्रतिशत के अलावा अन्य सभी सूक्ष्म पोषक तत्व एवं विभिन्न प्रकार के एंजाइम उपलब्ध होते हैं, जो पौधों के लिए आवश्यक होते हैं। यह मृदा की उर्वराशक्ति तथा जलधारण क्षमता को बढ़ाती है। केंचुआ खाद का प्रयोग फसल बुआई से पहले 4.0-5.0 क्विंटल/हैक्टर की दर से मृदा में मिलाकर किया जाता है। इसे अधिक प्रभावी बनाने के लिए मृदा में मिलाने के उपरांत इसे पुआल, सूखी पत्तियों या कूड़ा-करकट से मृदा की ऊपरी सतह को ढक दिया जाता है।

जैव उर्वरक

जैव उर्वरक प्राथमिक रूप से सक्रिय सूक्ष्मजीव होते हैं, जो कि पौधों की वृद्धि में वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर नाइट्रोजन में परिवर्तित कर मृदा फॉस्फोरस को घुलनशील बनाकर हार्मोन, विटामिन इत्यादि पदार्थों कों संतुलित मात्रा में बढ़ाते हैं।

जैव उर्वरकों के प्रयोग की विधियां

मृदा उपचार

इस विधि में 10-15 कि.ग्रा. बीज के लिए 200 ग्राम जैव उर्वरक की आवश्यकता होती है। जैव उर्वरक को 400 मि.ली. पानी में घोलकर बीजों के ऊपर डाल देते हैं। घोल को हाथों से बीजों में अच्छी तरह मिला देते है। बीजों को छाया में सुखाकर तुरंत बुआई कर देनी चाहिए।

स्वास्थ्य कारणों से जैविक उत्पादों की बढ़ती मांग

पौध उपचार

सर्वप्रथम एक कि.ग्रा. जैव उर्वरक को 10-15 लीटर पानी में घोल देते हैं। एक एकड़ क्षेत्रफल के लिए पौधों के छोटे-छोटे बंडल बनाकर उनकी जड़ों को 15-20 मिनट तक के लिए घोल में डुबो देते हैं। इसके बाद पौधों की तुरंत रोपाई कर देते हैं। इस विधि से प्याज, गोभी, टमाटर आदि फसलों का उपचार करते हैं।

कंद उपचार

कंदीय फसलें जैसे कि आलू, जिमीकंद, चुकन्दर, अदरक आदि का उपचार इस विधि से करते हैं। इस विधि में एक कि.ग्रा. जैव उर्वरक को 50-60 लीटर पानी में घोल देते हैं। कटे हुए टुकड़ों या सम्पूर्ण कंदों को 10-15 मिनट तक घोल में डुबो देते हैं। इसके बाद कंदों को घोल से निकालकर छाया में सुखा देते हैं। कंदों की तुरंत रोपाई कर देते हैं। उपरोक्त जैव उर्वरक की मात्रा एक एकड़ क्षेत्रफल के लिए पर्याप्त है।

स्लरी उपचार

आधा कि.ग्रा. जैव उर्वरक को 40 लीटर पानी में घोल लेते हैं। 2 कि.ग्रा. गुड़ को एक लीटर पानी में घोलकर अच्छी तरह उबाल लेते है। ठंडा होने पर इसको जैव उर्वरक के घोल में मिला देते हैं। 80 कि.ग्रा. कंदों को इस घोल में आधा घंटे के लिए डुबो देते हैं। इसके बाद कंदों को छाया में सुखाकर बुआई कर देते हैं। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित उपायों द्वारा भी फसल की सुरक्षा कम खर्च में की जा सकती है।

बेसिलस थुरेजेंसिस

इसे संक्षेप में बी.टी. के नाम से भी जाना जाता है, जो फूलगोभी एवं पत्तागोभी पर हीरक पीठ (डायमंड बैंक मॉथ) का नियंत्रण करता है। 500-1000 ग्राम कल्चर प्रति हैक्टर 650 लीटर पानी में घोलकर 15 दिनों के अंतराल पर इसका छिड़काव किया जाता है।

नीम आधारित कीटनाशक

इसका उपयोग सफेद मक्खियों, भृंग, फुदका (जेसिड) कटुआ कीट, टहनी तथा फलछेदक सूंडी पर किया जाता है। यह कीटों के जीवन चक्र को कमजोर बनाता है। सब्जी फसल के लिए लगभग 700 लीटर नीम घोल की आवश्यकता एक हैक्टर के लिए होती हैं। नीम बीज का घोल बनाने के लिए 34 कि.ग्रा. नीम के बीज को पीसकर 100 लीटर पानी में मिलाकर घोल तैयार करते हैं तथा 12 घंटे बाद इसे कपड़े में छानकर फसलों में छिड़काव करते हैं।

दलहनी एवं गैर-दलहनी फसल का सब्जी फसल के साथ सफल परीक्षण

कृषि विज्ञान केन्द्र, पाली द्वारा केंद्र के अधिदेश के तहत वर्ष 2013-14, 2014-15 एवं 2015-16 में अंतर्वर्ती फसल के रूप में भिण्डी के साथ लोबिया का प्रक्षेत्र परीक्षण किया गया। इसमें भिण्डी तथा लोबिया क्रमश: 2:1 के अनुपात में लगाया गया था, जिसकी औसत पैदावार क्रमश: 63.86 क्विंटल/हैक्टर (भिण्डी) तथा 27.30 क्विंटल/हैक्टर (लोबिया) तथा लाभ : लागत अनुपात 3.70 पाया गया। साथ ही साथ मृदा में औसतन 40-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन का यौगिकीकरण भी हुआ।

जून के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, विनोद कुमार सिंह, कपिला शेखावत,
प्रवीण कुमार उपाध्याय और **एस.एस. राठौर**
सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012

"खेती में जितना महत्व बारिश का है, उतना ही महत्व गर्मी का भी है। वैज्ञानिक सिफारिश करते हैं कि मई-जून में खेतों की गहरी जुताई करनी चाहिए। जुताई से खेतों में सारे हानिकारक कीट और रोगाणु ऊपरी सतह पर आ जाते हैं और तपती धूप में नष्ट हो जाते हैं। कीट और रोग रोकने का यह ऐसा कुदरती तरीका है, जो किसी भी रसायन से अधिक कारगर है। इससे आगामी ऋतु में फसल उगाने के लिए खेत सुरक्षित हो जाता है। बारिश की मात्रा भले ही पहले जितनी हो, लेकिन उसका वितरण असमान हो गया है। पहले बारिश रह-रहकर पूरे खरीफ मौसम में चलती रहती थी और फसल को अपने पूरे जीवनकाल में सिंचाई मिलती थी, वहीं अब टुकड़ों में होती है। कभी भारी बारिश होती है, तो कभी दो फुहारों के बीच लंबा सूखा अंतराल आ जाता है। ये दोनों स्थितियां फसल के लिए नुकसानदेह होती हैं। किसानों के लिए इसे ध्यान में रखते हुए आवश्यक हो गया है कि अपनी खेती में तदनुसार बदलाव करें। अधिक वर्षा के पानी को अपने खेतों में ही संचित करें ताकि सूखे के दौरान सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध रहे। इस प्रकार के संचयन को कहा गया है, 'गांव का पानी गांव में, खेत का पानी खेत में'।"

मूंग

उड़द

इस माह में खाली खेतों में खरीफ फसलों की बुआई के लिए तैयारी शुरू हो जाती है। क्षेत्र विशेष के आधार पर उपलब्ध जल व अन्य संसाधनों के आधार पर इस समय खरीफ की फसलों की बुआई के लिए कार्ययोजना शुरू की जाती है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों के साथ सिंचाई की समुचित व्यवस्था वाले क्षेत्रों में धान की रोपाई के लिए पौध तैयार की जाती है। बारानी क्षेत्रों में ज्वार, बाजरा, मक्का, रागी, मंडुआ के साथ-साथ तिलहनी फसलें जैसे-मूंगफली, सूरजमुखी, सोयाबीन, तिल, कुसुम व अरंडी, रेशेदार फसलें जैसे-कपास एवं जूट के साथ-साथ चारा फसलें जैसे-ज्वार, बाजरा, मक्का, लोबिया, ग्वार एवं लूसर्न आदि प्रमुख फसलों की बुआई के लिए प्रबंध किए जाते हैं। मानसून आने के बाद तैयार पौध की रोपाई जुलाई में की जाती है। धान की नर्सरी एवं सस्य प्रबंधन में सुझाई गई उन्नत सस्य क्रियाओं को अपनाना चाहिए, जिससे अधिक उत्पादन प्राप्त हो सके। इस महीने में कृषि कार्यों को करने के लिए मौसम आधारित कृषि परामर्श पर भी ध्यान देना चाहिए। मौसम में होने वाले बदलाव, खासकर मानसून के समय अस्थिर होने से खरीफ फसलों में अनुमानित नुकसान को कम करने के लिए आकस्मिक फसल योजना के लिए जरुरी संसाधनों जैसे-बीज का प्रबंध भी अवश्य कर लेना चाहिए। फसलों के अनुसार आवश्यक उन्नत सस्य क्रियाओं का विवरण इस लेख में दिया गया है।

जायद (ग्रीष्मकालीन) फसलों की कटाई

- फसल पूर्ण रूप से परिपक्व तब मानी जाती है, जब 75-80 प्रतिशत फलियां पक जायें तब हंसिया की सहायता से कटाई कर लेनी चाहिए। फसल को एक-दो दिनों के लिए खेत में ही सूखने के लिए छोड़ देना चाहिए। विलंब से कटाई करने पर फलियां चटक जाती हैं। कटाई के पश्चात मड़ाई करनी चाहिए तथा दानों को तब तक धूप में सुखाना चाहिए जब तक उसमें नमी 12 प्रतिशत से कम रह जाये। इसके बाद दानों को स्वच्छ एवं सूखे स्थान पर भंडारित करना चाहिए। ग्रीष्मकालीन फसल में कटाई एक साथ की जाती

मूंगफली

है, परंतु खरीफ की फसल में कई बार बरसात के कारण कटाई सम्भव नहीं हो पाती है, ऐसे में फलियों की तुड़ाई की जा सकती है। फलियों की तुड़ाई का काम 2-3 बार किया जाना चाहिए। इस प्रकार प्रति हैक्टर 12-14 क्विंटल तक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

- मक्का की दाने के लिए कटाई तब करें, जब भुट्टों के ऊपर की पत्तियां सूखने लगें तथा दाने सख्त हो जाएं। इस समय दानों में 25-30 प्रतिशत नमी रहती है। कटाई के बाद भुट्टों को एक सप्ताह के लिए धूप में सुखाएं तथा बाद में कॉर्नशेलर से दाने को भुट्टों से अलग कर दें। अधिक गुणवत्ता वाली बेबीकॉर्न के लिए इनकी तुड़ाई रेशा (सिल्क) निकलने के 2-3 दिनों के अंतराल पर ही करें तथा स्वीटकॉर्न में रेशा निकलने के लगभग 20-22 दिनों बाद का समय तुड़ाई के लिए उपयुक्त है, क्योंकि इस समय इनमें शुगर की मात्रा सबसे अधिक होती है।
- **जायद मूंगफली की खुदाई एवं भंडारण:** जायद मूंगफली की खुदाई तब करें, जब मूंगफली के छिलके के ऊपर नसें उभर आएं तथा भीतरी भाग कत्थई रंग के हो जाएं। खुदाई के बाद फलियों का सुखाकर भंडारण करें। यदि गीली मूंगफली का भंडारण किया जाता है तो मूंगफली काले रंग की हो जाती है, जो खाने एवं बीज के लिए अनुपयुक्त होती है।

हरी खाद वाली फसलों की देखभाल

- खरीफ के मौसम में हरी खाद के लिए प्रयुक्त होने वाली फसलें जैसे-ढैंचा, सनई, ग्वार, मूंग, उड़द व लोबिया आदि बहुत ही लाभकारी होती हैं। इन फसलों के बीजों को वर्षा से पहले सूखे खेत में भी छिड़ककर बुआई कर सकते हैं। इस प्रकार मानसून आने पर बीज अंकुरित हो जाता है। हरी खाद के लिए प्रति हैक्टर 50-60 कि.ग्रा. ढैंचा, 60-80 कि.ग्रा. सनई, 20-25 कि.ग्रा. ग्वार, 15-20 कि.ग्रा. मूंग व उड़द एवं 30-35 कि.ग्रा. लोबिया का बीज पर्याप्त होता है। ढैंचे की फसल से 45 दिनों में लगभग 20-25 टन हरा पदार्थ 85-105 कि.ग्रा. नाइट्रोजन; सनई की फसल से 40-50 दिनों में 20-30 टन हरा पदार्थ तथा 85-125 कि.ग्रा. नाइट्रोजन; ग्वार की फसल से 20-25 टन हरा पदार्थ तथा 68-85 कि.ग्रा. नाइट्रोजन; मूंग व उड़द की फसल से 10-12 टन हरा पदार्थ तथा 41-49 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं लोबिया की फसल से 15-18 टन हरा पदार्थ तथा 74-88 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर मृदा को प्राप्त होता है।

सनई

- हरी खाद बोने के समय सामान्य उर्वरता वाली मिट्टी में 10-15 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं 40-50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टर उर्वरक के रूप में मिलाने से ये फसलें पारिस्थितिकीय संतुलन बनाये रखने में अत्यंत सहायक होती हैं। इसके बाद जो दूसरी फसल लेनी हो उसमें नाइट्रोजन में भी 50 प्रतिशत तक की बचत की जा सकती है। जब फसल की वृद्धि अच्छी हो गई हो तब फूल आने के पूर्व इसे हल या डिस्क हैरो द्वारा खेत में पलट कर पाटा चला देना चाहिए। यदि खेत में 5-6 सें.मी. पानी भरा हो, तो पलटने व मिट्टी में दबाने में कम मेहनत लगती है। जुताई उसी दिशा में करनी

सूरजमुखी

जायद सूरजमुखी के फूलों का पिछला भाग नीबू के रंग की तरह पीला हो, तो कटाई के योग्य हो जाते हैं। निचले पत्ते सूखकर गिरने लगते हैं तब इनकी कटाई का सही समय होता है। जब सभी पत्ते सूख जाते, तब इनकी परिपक्व रूप

में कटाई की जा सकती है। इन फूलों के मुख्य भाग को अलग करके इन्हें 2-3 दिनों तक सुखाना चाहिए। इससे इनके बीजों को अलग करने में सुविधा होती है। इस तरह से तैयार किए गए फूलों को लकड़ियों या मशीन से पीटकर इनके बीजों को अलग किया जाता है। इन बीजों को भंडारगृह में रखने से पहले इन्हें सुखा लेना चाहिए ताकि इनकी नमी 10 प्रतिशत कम हो जाये। सूरजमुखी के डंठल दुधारु पशुओं के लिए एक अच्छा आहार होते हैं।

ढैंचा

ढैंचे की उन्नत प्रजाति जैसे-पंत ढैंचा-1, हिसार ढैंचा-1, सी.एस.डी. 123 एवं सी.एस.डी. 137 और सनई की प्रजाति नरेन्द्र सनई-1, के-12, एम.-18, एम.-35, बी.ई.-1, बेलगांव, दिनोंदवाड़ा, टी.-6, एस.टी.-55 तथा एस.एस.-2 आदि प्रमुख हैं, जिनसे पर्याप्त जैवपदार्थ मिलता है। ध्यान देने वाली बात है कि ढैंचा की फसल को 40-45 दिनों के भीतर ही खेत में मिला देना चाहिए। हरी खाद की पलटी में देरी होने से तना सख्त हो जाता है और इसका विघटन नहीं हो पाता। इस कारण से कई बार खेत में दीमक का प्रकोप बढ़ जाता है।

चाहिए, जिसमें पौधों के अपघटन में सुविधा होती है यदि पौधों को दबाते समय खेत में पानी की कमी हो या देरी से जुताई की जाती है तो पौधों के अपघटन में अधिक समय लगता है।

धान की नर्सरी तैयार करना एवं फसलों में देखभाल

- धान की अच्छी पैदावार तथा उत्तम गुणवत्तायुक्त उत्पादन लेने के लिए अच्छी प्रजाति का चयन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसलिए पानी के साधन, फसलचक्र व बाजार की मांग की स्थिति को ध्यान में रखकर उपयुक्त प्रजाति का चुनाव करें। **बासमती धान की उन्नत प्रजातियां** जैसे-पूसा बासमती-1637, पूसा बासमती 1609, पूसा 1612, पूसा बासमती 1718, पूसा बासमती 1726, पूसा बासमती 1728, पूसा बासमती 1884, पूसा बासमती 1, उन्नत पूसा बासमती 1, पूसा बासमती 4 (पूसा1121), पूसा बासमती 6, पूसा बासमती 1509, पंजाब बासमती-1, हरियाणा बासमती 1, तरावड़ी बासमती, सीएसआर-30 बासमती, मालवीय बासमती धान-2-1, मालवीय बासमती धान-1, पंजाब बासमती-2, बल्लभ बासमती-22, मालवीय बासमती धान 10-9, बल्लभ बासमती-21, बल्लभ बासमती-23 व सुंगधित धान की उन्नत प्रजातियां जैसे-पूसा सुगंध-2, पूसा सुंगध-3, पूसा सुगंध 5, पंत सुगंध 15, पंत सुगंध धान 17, माही सुगंध, मालवीय सुगंध 105, मालवीय सुगंध धान-4-3, सुगंध सम्बा व **मोटे धान की उन्नत प्रजातियां** जैसे-पूसा 44, पूसा 834, पूसा 677, सरजू 52, पीएनआर-381, नरेन्द्र धान 359, पीआर-111, पंत धान 12, पंत धान 16, एचकेआर-46, पीएनआर-519, पीआर-118, पीएनआर-546, मालवीय धान-3022, मालवीय धान-5-1, नवीन, नरेन्द्र धान 8002, जल्दी धान-13, पीआर-122, पंत धान 19, शुष्क सम्राट, सहभागी धान,

धान पूसा बासमती 1509

धान की सीधी बुआई

वर्षा विलम्ब से शुरू होने की दशा में पैडीड्रम द्वारा धान की सीधी बुआई

सिंचित और वर्षा जल की कमी को देखते हुए एरोबिक धान की सम्भावनाएं देश के विभिन्न धान उगाने वाले क्षेत्रों में बढ़ती जा रही हैं। उपयुक्त किस्म का चुनाव व उन्नत सस्य क्रियाएं अपनाकर धान की सीधी बुआई से कठिन परिस्थितियों में भी अधिक उत्पादकता एवं लाभ कमाया जा सकता है। इस विधि में अधिक उपज देने वाली किस्मों को लेवरहित या अनपडल्ड दशा में देसी हल या सीड ड्रिल या पैडीड्रम सीडर से सीधे खेत में बुआई करते हैं। इस विधि से धान की बुआई का उपयुक्त समय जून ही है। इस विधि में 25-30 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर को 25×10 सें.मी. की दूरी पर, खेत में पलेवा कर सीधी बुआई करते हैं। एरोबिक धान के लिए 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 40 कि.ग्रा. पोटाश के साथ 25-30 कि.ग्रा./हैक्टर जिंक सल्फेट की संस्तुति की जाती है।

सारणी 1. धान की फसल में रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण

रसायन	वास्तविक मात्रा कि.ग्रा., ली./है.	पानी की मात्रा ली./है.	छिड़काव करने का उपयुक्त समय
बिस्पाइरिबैक सोडियम 10 एस.सी. (नोमिनी गोल्ड)	250 मि.ली.	600-700	20 से 30 दिनों पर
पाईराजोसल्फ्यूरॉन ईथाइल 10 डब्ल्यू.पी.	25 ग्राम	600-700	10 से 20 दिनों पर
पेन्डिमेथलीन 30 ई.सी.	3.0-4.0	600-800	रोपाई/बुआई के एक से दो दिनों के अंदर
अनिलोफॉस 30 ई.सी.	1.25-1.50	500-600	फसल रोपने के तीन से चार दिनों बाद करें। बासमती धान में इस दवा का प्रयोग न करें
थायो बेनकार्ब 50 ई.सी.	2.0-3.0	500-600	फसल रोपने के तीन से चार दिनों बाद करें
प्रोटिलाक्लोर 50 ई.सी.	1.0-1.50	600-700	रोपाई/बुआई के एक से दो दिनों के अंदर
ब्यूटाक्लोर 5 जी.	25.0-40.0	500-600	रोपाई/बुआई के एक से दो दिनों के अंदर
ब्यूटाक्लोर 50 ई.सी.	2.5-4.0	600-800	फसलें रोपने के दो से तीन दिनों के बाद
ईथोक्सीसल्फ्यूरॉन 15 डब्ल्यू.डी.जी.	30 ग्राम	600-700	20-25 दिनों बाद
एजिमसल्फ्यूरॉन 50 डी.एफ.	70	600-700	50-60 दिनों बाद
साइहेलोफोप ब्यूटाईल 10 ई.सी.	75-80	600-700	10-20 दिनों बाद

धान की नर्सरी

स्वर्णा सब-1, मोती गोल्ड, मालवीय धान-46005 व **ऊसर धान की उन्नत प्रजातियां** जैसे-सीएसआर-10, नरेन्द्र ऊसर धान 2, सीएसआर-13, सीएसआर-27, नरेन्द्र ऊसर धान 3, सीएसआर-23, सीएसआर-36, नरेन्द्र ऊसर धान 2008 व **छोटे पतले धान की उन्नत प्रजातियां** जैसे-एमटीयू 7029, बीपीटी 5204, एमटीयू 1075, उन्नत सम्भा मंसूरी, नरेन्द्र लालमती, राजेन्द्र श्वेता व राजेन्द्र भागवती व धान की संकर किस्में जैसे-पीआरएच-10, कर्नाटक संकर धान 2, पी.ए. 6444, पी.ए. 6201, पी-एचबी. 71, आर.एच. 204, एच.आर. आई. 120, पंत संकर धान 1, नरेन्द्र संकर धान 2, नरेन्द्र ऊसर संकर धान 3, पीएसी. 835, पी.ए. सी. 837 एवं **धान की कालानमक किस्में** जैसे-बौना कालानमक, कालानमक-101, कालानमक-102 व के.एन.-3 आदि प्रमुख हैं।

- **खाद एवं उर्वरक की मात्रा:** मृदा परीक्षण के बाद पोषक तत्वों की मात्रा निर्धारित करते हैं। धान की बौनी प्रजातियों के लिए 100-120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40 कि.ग्रा. पोटाश एवं 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट/ हैक्टर की आवश्यकता होती है। बासमती की लंबी किस्मों में 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन पर्याप्त होती है। एसएसपी, एमओपी एवं जिंक की पूरी मात्रा आखिरी जुताई के समय देनी चाहिए। पौधा अच्छी तरह मृदा को पकड़ ले तो यूरिया की पहली तिहाई मात्रा रोपाई के पांच दिनों बाद समान रूप से छिड़क दें। दूसरी एक तिहाई मात्रा कल्ले फूटते समय रोपाई के 25-30 दिनों बाद तथा शेष एक तिहाई मात्रा को फूल आने से पहले 50-60 दिनों बाद खड़ी फसल में छिड़काव करें। यूरिया डालने के 24 घण्टे बाद ही पानी दें। यदि हरी खाद या गोबर की खाद का प्रयोग किया गया हो तो नाइट्रोजन की मात्रा 20-25 कि.ग्रा./ हैक्टर की दर से कम कर देनी चाहिए। अगर एसएसपी की जगह पर डीएपी का प्रयोग कर रहे हैं तो यूरिया की मात्रा 50 कि.ग्रा./हैक्टर कम कर दें।
- **नील हरित शैवाल का प्रयोग:** नील हरित शैवाल की अधिकतर प्रजातियां नाइट्रोजन का मृदा में एकत्रीकरण करती हैं। नील हरित शैवाल के प्रयोग से करीब प्रतिवर्ष/ हैक्टर 20-30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन मृदा में स्थापित होती है जिसका प्रयोग धान की फसल के द्वारा होता है। 10-15 कि.ग्रा. टीका रोपाई के एक सप्ताह बाद खड़े पानी में/हैक्टर की दर से बिखेर दें। शैवाल प्रयोग कम से कम तीन साल तक लगातार करें। शैवाल प्रयोग में इस बात का ध्यान रखें कि खेत में पानी सूखने न पाये। धान की फसल में इसके साथ 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हैक्टर देने पर अच्छी उपज प्राप्त होती है।
- **निराई, गुड़ाई व खरपतवार नियंत्रण:** लेहयुक्त धान की फसल में खरपतवारों की विशेष समस्या नहीं होती है। खरपतवार निकलने पर उन्हें उखाड़कर खेत में गहरे गड्ढे में दबा देते हैं। धान में 47 से 86 प्रतिशत तक का नुकसान खरपतवार के द्वारा होता है। आजकल बहुत से खरपतवारनाशी रसायन बाजार में उपलब्ध हैं, जिनका समय पर सही मात्रा में उपयोग कर खरपतवारों से होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है।
- **धान उत्पादन की श्री विधि:** नर्सरी तैयार करने में विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता है। श्री विधि के अंतर्गत 8-12 दिनों पुरानी पौध को 25×25 सें.मी. की दूरी पर 2-3 सें.मी. की गहराई पर अंगूठे एवं अनामिका अंगुली की सहायता से दबा दें। पौधशाला नर्सरी से पौध निकालने के बाद 30 मिनट के अंदर रोपाई का प्रयास करना चाहिए। शीघ्र लगाने से जड़ों का विकास अच्छा होता है, जो स्वस्थ पौधों के विकास में सहायक होता है।

ज्वार, बाजरा मक्का और अन्य मोटे अनाजों की बुआई एवं देखभाल

- ज्वार की खेती शुष्क जलवायु अर्थात कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जा सकती है। इसके लिए तापमान 25^0-35^0 सेल्सियस उपयुक्त होता है। इसके लिए 40-60 सें.मी. वार्षिक वर्षा भी उपयुक्त रहती है। ज्वार के लिए हल्की दोमट, बलुई दोमट और भारी दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। इसके साथ में जल निकास अच्छा होना चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन

कोनोवीडर द्वारा खरपतवार प्रबंधन करने से खरपतवार, खेत में ही पलटकर मिट्टी में दबाने से सड़कर जैविक खाद का काम करते हैं। इस प्रकार पौधों को पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। कोनोवीडर का प्रयोग करने से मृदा में वायु संचार बढ़ जाता है। वायु संचार में वृद्धि के

श्री पद्धति में कोनोवीडर द्वारा खरपतवार प्रबंधन

फलस्वरूप भूमि में मौजूद लाभकारी सूक्ष्म जीवाणुओं की गतिविधियां बढ़ जाती हैं। जैविक पदार्थों को शीघ्र सड़ाकर पौधों को पोषक तत्व के रूप में उपलब्ध करवाती हैं। स्थानीय विधि के अंतर्गत जड़ में वायु संचार बढ़ने से जड़ों का विकास एवं फैलाव अधिक होता है। पौधरोपण के 10 दिनों बाद से 10 दिनों के अंतराल पर 3 से 4 बार कोनोवीडर चलाकर खरपतवारों का प्रबंध करना आवश्यक होता है। साथ ही साथ कोनोवीडर के चलाने के लिए खेत में पर्याप्त मात्रा में नमी होनी चाहिए।

- ज्वार की बुआई के लिए जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक उपयुक्त समय है। बारानी क्षेत्रों में इसकी बुआई वर्षा के तुरंत बाद करनी चाहिए। ज्वार के बीज की मात्रा सामान्य (संकुल) किस्मों के लिए 10-12 कि.ग्रा. और संकर किस्मों के लिए 8-9 कि.ग्रा./हैक्टर उपयुक्त रहती है। ज्वार की बुआई के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी एवं पौधे से पौधे की दूरी 45×15 सें.मी. रखी जानी चाहिए।

बाजरा

बाजरा की खेती हल्की भूमि में की जाती है। अत: 10-15 टन गोबर की खाद/हैक्टर उपयोग में ली जानी चाहिए। रासायनिक खादों का प्रयोग मिट्टी परीक्षण के बाद ही करना चाहिए। अनुमान के अनुसार बाजरा की संकर प्रजातियों के लिए 80-90 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 40

कि.ग्रा. पोटाश तथा संकुल प्रजातियों के लिए 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 25 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 25 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर बुआई के समय प्रयोग करें। सभी परिस्थितियों में नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा लगभग 3-4 सें.मी. की गहराई पर डालनी चाहिए। नाइट्रोजन की बची हुई मात्रा अंकुरण से 4-5 सप्ताह बाद खेत में बिखेरकर मिट्टी में अच्छी तरह मिला देनी चाहिए। बाजरा की फसल में थायोयूरिया, जो एक पादप वृद्धि नियामक है, का 0.1 प्रतिशत का घोल 1 ग्राम लीटर बुआई के 30-35 दिनों बाद एवं सिट्टे बनते समय दूसरा छिड़काव करने से उपज में 10-15 प्रतिशत वृद्धि की जा सकती है। इससे फसल में सूखा सहन करने की क्षमता में वृद्धि होती है।

ज्वार

ज्वार की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए एक हैक्टर में पौधों की कुल संख्या लगभग 1,50,000 होनी चाहिए। बुआई से पूर्व बीज को कार्बेंडाजिम या एग्रोसन जीएन या कैप्टॉन आदि से 2-5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से शोधित कर लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त बीज को जैविक उर्वरक एजोस्पीरिलम व पीएसबी से भी उपचारित करने से 15-20 प्रतिशत अधिक उत्पादन लिया जा सकता है।

- **ज्वार की संकर प्रजातियां** जैसे- सीएसएच 1, सीएसएच 9, सीएसएच 11, सीएसएच 13, सीएसएच 14, सीएसएच 16, सीएसएच 17, सीएसएच 18, सीएसएच 23 एवं **संकुल प्रजातियां** जैसे-पूसा संकुल 701, पूसा संकुल 1201, वर्षा, सीएसवी 13, सीएसवी 15, एसपीवी 699, एसवी 1066, डीएसवी 1, डीएसवी 2, सीएसवी 10, सीएसवी 11, एसपीवी 462, मोती, एसपीवी 235, जेजे 741, जेजे 938, जेजे 1041, जेजे 35, जीजे 38, जीजे 39, जीजे 40, जीजे 41, एसपीवी 96, एसपीवी 881, सीओ 24, सीओ 25, सीओ 26, सीओ 27, सीओ (एस) 28 आदि प्रमुख हैं। **चारा वाली किस्में** पूसा चरी-6, पूसा चरी-9, पूसा चरी-23, यूपी-1, यूपी-2, पंत चरी-3, एचसी-308, हरियाणा चरी-171, एसएसजी-5, एसएसजी-8, एसएसजी-9 और पन्नी संकर ज्वार-5 इत्यादि हैं।
- सिंचित दशा में ज्वार की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए 100-120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 40-50 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर की आवश्यकता पड़ती है। असिंचित दशा में 50-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30-40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 30-40 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर पर्याप्त है। सूक्ष्म पोषक तत्वों में जिंक तथा आयरन, ज्वार के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। इन तत्वों की कमी को पूरा करने के लिए जिंक का 0.2 प्रतिशत तथा आयरन के 0.15 प्रतिशत घोल का पर्णीय छिड़काव बुआई के 35-40 दिनों बाद अवश्य कर देना चाहिए। यदि जैविक खाद जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद आदि उपलब्ध हों तो 10 टन/हैक्टर की दर से बुआई के 15-20 दिनों पूर्व खेत में समान रूप से छिड़ककर भूमि में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। जैविक खाद के प्रयोग से मृदा की भौतिक दशा में सुधार होता है तथा भूमि की जलधारण क्षमता भी बढ़ती है।
- इसी प्रकार कोदों, चीना, मंडुआ, रागी और सांवा फसलों की बुआई के लिए भी तैयारी इस माह में शुरू करते हैं।

मक्का

कोदों की 10-12 कि.ग्रा. और अन्य मोटे अनाज वाली फसलों में 8-10 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर का उपयोग करते हैं।

- बाजरा की फसल वृद्धि के लिए शुष्क एवं गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है। इसकी वृद्धि एवं विकास के लिए 28^0-32^0 सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। बाजरा की खेती पूर्णतया वर्षा पर आधारित है, जो वर्षा की अनियमितता, देरी, अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि से प्रभावित होती है। इन समस्याओं को ध्यान में रखकर बाजरा की खेती करनी चाहिए, जिससे उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। बाजरा की खेती कई प्रकार की भूमि में की जाती है। इसके लिए अच्छे जल निकास वाली दोमट मृदा सर्वाधिक उपयुक्त होती है। उपलब्ध होने पर 20-22 टन गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद पहली जुताई के समय खेत में डालें। अच्छी वर्षा होने के बाद 2-3 बार हैरो चलाकर खेत तैयार करें एवं भूमि को समतल करें। इससे वर्षाकाल में जल का निकास अच्छी तरह से हो जाता है। बाजरा की बुआई जून से जुलाई में की जाती है, जो वर्षा पर निर्भर है। उपयुक्त समय 15 जून से 15 जुलाई है। जून में अच्छी वर्षा होने के अवसर पर बुआई कर देनी चाहिए। यदि वर्षा देरी से या लगातार भारी वर्षा हो तो ऐसी स्थिति में बाजरा की सीधी बुआई न करें। पौधे तैयार कर मुख्य खेत में रोपित किए जा सकते हैं।
- बाजरा की फसल के लिए 4-5 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर पर्याप्त होता है। इनकी बुआई पंक्तियों में करनी चाहिए, जो बहुत लाभकारी होती है। पंक्तियों में बुआई से फसल को कम पानी की आवश्यकता होती है। पोषक तत्व भी सही मात्रा में पौधे को उपलब्ध होते हैं। बुआई के लिए 45 सें.मी. पंक्ति से पंक्ति की दूरी और 10-12 सें.मी. पौधे से पौधे की दूरी रखनी चाहिए। 2-3 सें.मी. गहराई पर बुआई करें। इस प्रकार पौने दो लाख से दो लाख पौधे/हैक्टर होने चाहिए।
- बाजरा की बुआई जून से जुलाई में की जाती है। यह वर्षा पर निर्भर है। उपयुक्त समय 15 जून से 15 जुलाई है। जून में अच्छी वर्षा होने पर बुआई कर देनी चाहिए। यदि वर्षा देरी से हो या लगातार भारी वर्षा हो तो ऐसी स्थिति में बाजरा की सीधी बुआई न कर पौध तैयार कर मुख्य खेत में इसे रोपित किया जा सकता है।
- बाजरा की **संकुल प्रजातियां** जैसे-पूसा कम्पोजिट 701, पूसा कम्पोजिट 1201, पूसा कम्पोजिट 266, पूसा कम्पोजिट 234, पूसा कम्पोजिट 383, पूसा 443, पूसा कम्पोजिट 643, पूसा कम्पोजिट 612, आई.सी.एमवी-155, डब्ल्यूसीसी-75,एचसी 4, एचसी 10 आई.सी.टीपी 8203, राज बाजरा चरी 2 व राज 171 एवं **संकर प्रजातियां** जैस-पूसा 23, पूसा 415, पूसा 605, पूसा 322, एचएचबी 50, एचएचबी 67, एचएचडी 68, एचएचबी 117, एचएचबी इम्प्रूव्ड, आरएचडी 30, आरएचडी 21, जीएचबी 15, जीएचबी 30, जीएचबी 318, नंदी 8, एलएलबीएच 104, श्रद्धा, सतूरी, एमएलबीएच 285, आई.सी.एमवी 155, आई.सी.एमवी 221 और आई.सी.एमएच-451 आदि प्रमुख हैं।
- खरीफ मक्का में उचित संख्या 65,000 से 78,000 पौधे प्रति हैक्टर प्राप्त करने के लिए 20-25 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर की आवश्यकता पड़ती है। बीज उत्पादन के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 से 75 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 12-15 सें.मी. रखनी चाहिए। बीज 4-5 सें.मी. की गहराई पर बोना चाहिए। संकर बीज उत्पादन में संकर प्रजातियों में नर व मादा क्रमशः 2 व 4 पंक्तियों में बोये जाते हैं। सामान्य स्थिति में बुआई हल के पीछे कूंड़ों में 3.5 सें.मी. की गहराई पर करें। पंक्ति से पंक्ति की दूरी अगेती किस्मों के लिए 45 सें.मी.

सारणी 2. अरहर की खेती के लिए संस्तुतियां

फसलें	बीज की मात्रा (कि.ग्रा./हैक्टर)	पंक्ति से पंक्ति की दूरी (सें.मी.)	पौधे से पौधे की दूरी (सें.मी.)	नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश (कि.ग्रा./हैक्टर)	सल्फर व जस्ता (कि.ग्रा./हैक्टर)
अगेती अरहर	15-20	45	10-15	15.20:40.50:20	20:15
पछेती अरहर	10-15	60-75	20-25	15.20:40.50:20	20:15

मूंगफली

मूंगफली की मध्यम और अधिक फैलने वाली किस्मों में क्रमशः 80-100 और 60-80 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर, जबकि गुच्छेदार किस्मों में बीज की उचित मात्रा 100-125 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर पर्याप्त होती है। बुआई से पूर्व बीज को 2 या 3 ग्राम थीरम या कार्बेन्डाजिम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से शोधित करें। इस

उपचार के 5-6 घंटे बाद, बीज को एक विशिष्ट प्रकार के उपयुक्त राइजोबियम कल्चर से उपचारित करें। उपचार के बाद बीज को छाया में सुखायें एवं शीघ्र ही बुआई के लिए उपयोग करें। मूंगफली की उन्नत प्रजातियां जैसे-आई.सी.जी.एस. 11, आई.सी.जीएस. 44, आई.सी.सी.एस. 37, जी.जी. 3, जी.जी. 6, जी.जी. 12, वी. आर.आई .2, जी.जी. 11, जी.जी. 20, गिरनार 1, जे. 11, जी.ए.यू.जी. 1, सोमनाथ, कौशल, टी.ए.जी. 24, टीएजी 26, करद 4-11, कोनकन, गौरव, जे. एल. 24, कादिरी 4, प्रगति जे.एल. 220, एल.जी.एन. 2, ज्योति, गंगापुरी, जवाहर, कौशल, मुक्ता, प्रकाश, चित्रा, बी.ए.यू. 13, आर.जी. 141, आर.जी. 144, पंजाब मूंगफली नं-1, एस.जी. 44, एस.जी. 84, आई.सी.जी.एस. 37, आई.सी.जी.एस. 1, एच.एन.जी. 10, एम.एच. 4, एम. 335, डी.आर.जी. 17, अम्बर, एम.ए. 16, एम. 522 आदि हैं।

तथा मध्यम व देर से पकने वाली प्रजातियों में 60 सें.मी. होनी चाहिए। पौधे से पौधे की दूरी अगेती किस्मों में 20 सें.मी. एवं मध्यम एवं देर से पकने वाली प्रजातियों में 25 सें.मी. होनी चाहिए।

- मक्का की भरपूर उपज लेने के लिए संतुलित उर्वरकों का प्रयोग, उर्वरकों की मात्रा, मिट्टी के उपजाऊपन व अन्य प्रबंध कारकों पर भी निर्भर करता है। अत: किसानों को मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। आमतौर पर मक्का के लिए 120-150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 50 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर की दर से संस्तुत की जाती है। नाइट्रोजन की एक चौथाई मात्रा तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुआई से पहले खेत में देनी चाहिए। यदि मिट्टी में जीवांश पदार्थ की कमी हो तो बुआई से लगभग 15-20 दिनों पहले 6-8 टन/हैक्टर की दर से गोबर की खाद का प्रयोग करने पर 25 प्रतिशत नाइट्रोजन की मात्रा कम कर सकते हैं। बची हुई शेष नाइट्रोजन दो बार में बराबर-बराबर मात्रा में टॉपड्रेसिंग के रूप में प्रयोग करें। पहली टॉपड्रेसिंग जब फसल घुटनों की ऊंचाई तक हो जाये तब प्रयोग में लायें। दूसरा भाग जड़ें निकलने के समय खेत में डालें। जिन क्षेत्रों में गत वर्ष ऐसे लक्षण दिखाई दिये हों, उनमें अंतिम जुताई के साथ 20-25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट/हैक्टर की दर से भूमि में मिलाकर बीज बोना चाहिए।
- खरीफ मक्का की खेती परिपक्वता अवधि के आधार पर, अधिक उपज देने वाली बहुत सी संकर प्रजातियां उपलब्ध हैं। **मक्का की जल्दी पकने वाली प्रजातियां** जैसे-पीईएचएम 2, पीईएचएम 3, पीईएचएम 5, विवेक संकर मक्का 4, विवेक संकर मक्का 5, विवेक संकर मक्का 9, विवेक संकर मक्का 15, विवेक संकर मक्का 17, विवेक संकर मक्का 21, विवेक संकर मक्का 27, विवेक संकर मक्का 29, विवेक संकर मक्का 33, विवेक संकर मक्का 43, प्रकाश आदि हैं। ये प्रजातियां 75-85 दिनों में पककर तैयार हो जाती हैं। **मक्का की मध्यम परिपक्वता की प्रजातियां** जैसे-पूसा एचएम 4, पूसा एचएम 8, पूसा एचएम 9, पीएचएम 1, केएच 510, जवाहर मक्का, एमएमएच 69, एचएम 10, एमएचएम 2, बायो 9637 आदि हैं। ये प्रजातियां 85-95 दिनों में पक जाती हैं। इन प्रजातियों को सिंचित व वर्षा आधारित क्षेत्रों में उगाया जा सकता है। मक्का की **पूर्णकालिक परिपक्वता की प्रजातियां** जैसे-केएच 528, सीड टैक 2324, शीतल, बुलंद, पीएचएच 3 आदि 100-110 दिनों में पकती हैं। प्रोटीनयुक्त मक्का की प्रजातियां जैसे-विवेक क्यूपीएम 9, एचक्यूपीएम 1, एचक्यूपीएम 4, एचक्यूपीएम 5, एचक्यूपीएम 7, शक्तिमान 1 व शक्तिमान 3, शक्तिमान 4 आदि प्रमुख हैं। इन प्रजातियों को उन क्षेत्रों में बोना चाहिए, जहां पर सिंचाई देकर समय से बुआई हो सके तथा फसलकाल में वर्षा सुनिश्चित हो।
- सभी राज्यों के लिए विशेष प्रकार के मक्का की किस्में जैसे-बेबीकॉर्न के लिए पूसा संकर 2, पूसा संकर 3, एचएम-4, बीएल-42 एवं जी-5414, पॉपकार्न के लिए पर्ल पॉपकार्न एवं अम्बर पॉपकार्न एवं मीठी मक्का के लिए प्रिया एवं माधुरी आदि प्रमुख हैं।
- मक्का की खेती में निराई-गुड़ाई का अधिक महत्व है। निराई-गुड़ाई द्वारा खरपतवार नियंत्रण के साथ ही जड़ों में ऑक्सीजन का संचार होता है, जिससे वह दूर तक फैलकर भोज्य पदार्थ को एकत्र कर पौधों के अन्य हिस्सों तक पहुंचाती हैं। पहली निराई जमाव के 15-20 दिनों के बाद एवं दूसरी निराई 35-40 दिनों बाद करनी चाहिए। खरपतवारनाशी एट्रॉजीन (50 प्रतिशत डब्ल्यू.सी.) 1.5-2.0 कि.ग्रा./हैक्टर घुलनशील चूर्ण का 600-800 लीटर पानी में घोलकर बुआई के दूसरे या तीसरे दिन के बाद अंकुरण से पूर्व प्रयोग करने से खरपतवार नष्ट हो जाते हैं। दूसरे खरपतवारनाशी एलाक्लोर (50 ई.सी.) का 4-5 लीटर बुआई के तुरन्त बाद अंकुरण के पूर्व 700-800 लीटर पानी में मिलाकर भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। यदि मक्का के बाद आलू की खेती करनी हो तो एट्राजीन का प्रयोग न करें।

अरहर की बुआई एवं देखभाल

- अरहर खरीफ के मौसम में उगाई जाने वाली दलहनी फसल है। अरहर की खेती अगेती व पछेती फसल के रूप में करते हैं। सिंचित क्षेत्रों में अगेती अरहर की बुआई मध्य जून में पलेवा करके अवश्य करें। मेड़ों पर बोने से अच्छी उपज मिलती है। बुआई के समय पंक्तियों का अंतर 30-45 सें.मी. और पौधे से पौधे का अंतर 5-10 सें.मी. सही रहता है। खरीफ की बुआई के

सूरजमुखी

सूरजमुखी की 15 जून के बाद बीज उपचारित करके बुआई करें। सूरजमुखी की उन्नत संकुल प्रजातियां जैसे-सूर्या, मॉडर्न, डीआरएफ--108, को-5, टीएएसएफ-82, एलएसएफ-8, फुले रविराज तथा संकर प्रजातियां जैसे-केवीएसएच-1, एसएच-3322, एमएसएफएच-1785-90, केवीएसएच-44, डीआरएसएच-1, पीएसएफएच-118, पीएसएफएच-569, एचएसएफएच-848, मारुती, केवीएसएच-41, केवीएसएच-42, केवीएसएच-44 व केवीएसएच-53 प्रमुख हैं। संकर प्रजातियों का 7-8 कि.ग्रा. तथा संकुल प्रजातियों का 12-15 कि.ग्रा. बीज एक हैक्टर बुआई के लिए पर्याप्त होता है। संकर प्रजातियों की बुआई 60×20 सें.मी. तथा संकुल प्रजातियों की बुआई 45×20 सें.मी. दूरी पर करनी चाहिए। सूरजमुखी की बुआई के 15-20 दिनों बाद खेत से फालतू पौधों को निकालकर पौधे से पौधे की दूरी 20 सें.मी. रखें। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए पेंडीमैथेलीन (30 ई.सी.) 3.3 लीटर/हैक्टर की दर से 800 लीटर पानी में घोलकर बुआई के बाद एवं जमाव से पहले छिड़काव करें।

अरहर पूसा-16

लिए 15 से 18 कि.ग्रा./हैक्टर बीज पर्याप्त रहता है तथा बीजों को 4-5 सें.मी. गहराई में बोना चाहिए।

- अरहर की **उन्नत प्रजातियां** जैसे-पूसा 16, पूसा 991, पूसा 992, पूसा 2001, पूसा 2002, पूसा 33, पूसा 855, पूसा 9, उपास 120, प्रभात, बहार व टाइप-21 **शीघ्र पकने वाली** तथा पंत अरहर 291, मानक, अमर, नरेन्द्र अरहर 1, नरेन्द्र अरहर 2, आजाद के 91-25, मालवीय विकल्प 3, मालवीय विकल्प 6, मालवीय चमत्कार 13, टाइप-7 व टाइप-17 आदि **देर से पकने वाली** प्रमुख हैं।
- प्रयोगों द्वारा यह साबित हो चुका है कि मेड़ों पर अरहर की बुआई करने पर न केवल पैदावार में बढ़ोतरी होती है, बल्कि इस तकनीक को अपनाने से जलभराव के नुकसान से भी बचा जा सकता है। इसके साथ ही कवकजनित रोगों का हमला भी कम होता है।
- मृदा एवं बीजजनित कई कवक एवं जीवाणुजनित रोग मृदा अंकुरण होते समय तथा अंकुरण होने के बाद बीजों को काफी क्षति पहुंचाते हैं। बीजों के अच्छे अंकुरण तथा स्वस्थ पौधों की पर्याप्त संख्या के लिए बीजों को कवकनाशी से उपचारित करने की सलाह दी जाती है। इसके लिए प्रति कि.ग्रा. बीज को 2 से 2.5 ग्राम थीरम तथा 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम से उपचारित करने के बाद राइजोबियम कल्चर से बीजोपचार करना चाहिए। अच्छी पैदावार के लिए प्रति इकाई क्षेत्र में पौधों की निर्धारित संख्या अनिवार्य है। कम पौधों की स्थिति में खरपतवारों का जमाव व विकास अधिक होगा तथा उत्पादन पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण की संस्तुतियों के आधार पर किया जाना चाहिए। भरपूर उत्पादन के लिए संतुलित उर्वरक का प्रयोग करें।

सोयाबीन की फसल की बुआई एवं देखभाल

सोयाबीन न केवल प्रोटीन का एक उत्कृष्ट स्रोत है, बल्कि यह कई कायिक गुणों को भी प्रभावित करता है। आधुनिक शोध में पाया गया है कि सोया प्रोटीन मानव रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा कम करने में सहायक होता है। सोयाबीन के तेल की खपत मूंगफली एवं सरसों के तेल के पश्चात सबसे अधिक होने लगी है।

सोयाबीन फसल के लिए शुष्क गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है। इसके बीजों का जमाव 25^0 सेल्सियस पर 4 दिनों में हो जाता है, जबकि इससे कम तापमान होने पर बीजों के जमाव में 8-10 दिन लगते हैं। अत: सोयाबीन की खेती के लिए 60-65 सें.मी. वर्षा वाले स्थान उपयुक्त माने गए हैं। सोयाबीन की खेती के लिए उचित जल निकास वाली दोमट भूमि सबसे अच्छी रहती है। सोयाबीन की बुआई मैदानी एवं मध्य क्षेत्रों में मध्य जून से मध्य जुलाई तक, दक्षिणी क्षेत्रों में मध्य जून से जुलाई अंत तक तथा उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों में मध्य जून से मध्य जुलाई तक पूरी कर लें।

पौधों के जमने के पश्चात सोयाबीन के पौधों को अधिक पानी से नुकसान नहीं होता। इनके पौधों की जड़ों में एरेनकाइका ऊतक बन जाते हैं। ये जड़ों को हवा प्रदान करते हैं। फलस्वरूप उनकी श्वसन व अन्य क्रियाएं आवश्यकतानुसार होती रहती हैं। फूल आने से 2 सप्ताह पूर्व सिंचाई अवश्य करनी चाहिए, जिससे पौधों पर फलियां अधिक से अधिक लग सकें।

बीज का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि बीज ज्यादा पुराना न हो, क्योंकि एक साल के बाद इसकी अंकुरण क्षमता कम हो जाती है। छोटा दाना 60-65 कि.ग्रा., मध्यम दाना 70-75 कि.ग्रा. एवं मोटा दाना 80-85 कि.ग्रा./हैक्टर पर्याप्त होता है। सोयाबीन की बुआई लाइनों में 45×5 सें.मी. की दूरी में करनी चाहिए। बुआई से पहले बीज को 2 ग्राम थीरम + 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम/कि.ग्रा. बीज की दर से भली प्रकार उपचारित कर लेना चाहिए। इसके बाद राइजोबियम एवं पीएसबी जीवाणु टीके से बीज को उपचारित करें।

सोयाबीन की **उत्तर मैदानी क्षेत्रों के** लिए पी.के. 416, पूसा 16, पी.एस. 564, पी. एस. 1024, पी. एस. 1042, पी.एस. 1024, पी. एस. 1241, पी.एस. 1347, डी एस. 9814, डी एस. 9712, एस.ल. 295, एस.एल. 525, **मध्य भारत क्षेत्र के** लिए एन.आर.सी. 7, ए.आर.सी. 37, जे.एस. 80-21, समृद्धि, एम.ए.यू.एस. 81, जे.एस. 93-05, जे.एस. 95-60, जे.एस. 335, **उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के** लिए बिरसा सोयाबीन 1, इंदिरा सोया 9, प्रताप सोया 9, एम.ए.यू.एस. 71, जे.एस. 80-21 एवं **उत्तर पहाड़ी क्षेत्र के** लिए शिलाजीत, पूसा 16, वी.एल. सोया 2, वी.एल.सोया 47, हरा सोया, पालम सोया, पंजाब, पी.एस. 1241, पी.एस. 1092, पी.एस, 1347, वी.एस.एस. 59, वी.एस.एस. 63, आदि संस्तुत प्रजातियां हैं। अच्छा उत्पादन लेने के लिए लगभग 5-10 टन/हैक्टर अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद बुआई से लगभग 20-25 दिनों पहले खेत में अच्छी तरह से मिला देनी चाहिए। सोयाबीन की फसल में 20-25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60-80 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40-50 कि.ग्रा. पोटाश और 20-25 कि.ग्रा. गंधक प्रति हैक्टर पोषक तत्वों की मात्रा देनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण के लिए बुआई के बाद और अंकुरण से पहले एलाक्लोर (50 ई.सी.) की 4 लीटर या फ्लूक्लोरोलिन या ट्राइफ्लोरालिन 1 कि.ग्रा. या पेन्डीमेंथिलीन 1 कि.ग्रा. या क्लोमोजोन 1 कि.ग्रा. मात्रा का 600-800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

- उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण की संस्तुतियों के आधार पर किया जाना चाहिए। अरहर की अच्छी उपज लेने के लिए 10-15 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40-50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 20 कि.ग्रा. सल्फर/हैक्टर की आवश्यकता होती है। अरहर की अधिक से अधिक उपज के लिए फॉस्फोरसयुक्त उर्वरकों जैसे सिंगल सुपर फॉस्फेट 250 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर या 100 कि.ग्रा. डीएपी एवं 20 कि.ग्रा. सल्फर पंक्तियों में बुआई के समय देनी चाहिए, जिससे उर्वरक का बीज के साथ सम्पर्क न हो। भरपूर उत्पादन के लिए संतुलित उर्वरक का प्रयोग करें। कुछ क्षेत्रों में जस्ता या जिंक की कमी की अवस्था में 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से इसका प्रयोग करना चाहिए।

मूंगफली, सूरजमुखी और तिलहन फसलों की बुआई एवं देखभाल

- खरीफ मौसम की फसल के लिए जून के अंतिम सप्ताह से लेकर जुलाई के प्रथम सप्ताह तक का समय तिल की अधिक उपज के लिए उपयुक्त पाया गया है। अधिक उपज लेने तथा निराई-गुड़ाई में आसानी के लिए तिल को कतारों में बोना चाहिए। कतारों के बीच का फासला 30 से 45 सें.मी. का रखें। वांछित पौध संख्या प्राप्त करने के लिए 4 से 5 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर प्रयोग करें। बुआई के 15 से 20 दिनों बाद पौधों की छंटाई करते समय पौधे से पौधे की दूरी 10 से 15 सें.मी. रखें। फसल की अधिक उपज लेने के लिए गुजरात तिल नं.-1, गुजरात तिल नं.-2, फुले तिल नं.-1, प्रताप, ताप्ती, पदमा, एन.-8 डी. एम. 1, पूर्वा 1, आर.टी. 54, आर.टी. 103, आर. टी. 54, आर.टी. 103, आर.टी. 46, आर.टी. 125, टी.सी. 25, टी. 13, एन. 32, जे.टी. 2, टी.के.जी. 21, टी.के.जी. 22, टी.के.जी. 55, उमा,

तिल

रामा, कृष्ण, पटना-64, कांके सफेद, विनायक, कलिका, कनक उमा, ऊषा, बी. 67, पंजाब तिल 1, हरियाणा तिल 1, शेखर, टी. 12, टी. 14 आदि उन्नत किस्में हैं।

- मिट्टी की जांच संभव न होने की अवस्था में सिंचित क्षेत्रों में 40-50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 20-30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 20 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर देनी चाहिए। वर्षा आधारित फसल में 20-25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन और 15 से 20 कि.ग्रा. फॉस्फोरस/हैक्टर का प्रयोग करें। मुख्य तत्वों के अतिरिक्त 10 से 20 कि.ग्रा./हैक्टर गंधक का उपयोग करने से तिल की उपज में वृद्धि की जा सकती है। जिंक की कमी होने पर दो वर्ष में एक बार 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट/हैक्टर का प्रयोग करें। लंबे समय के लिए सूखा पड़ने की अवस्था में खड़ी फसल में 2 प्रतिशत यूरिया के घोल का छिड़काव करें।
- अच्छे जल निकास वाली सभी तरह की मृदा में इसकी खेती की जा सकती है, लेकिन दोमट व बलुई दोमट मृदा, जिसका पीएच मान 6.5-8.5 हो, इस के लिए बेहतर होती है। 26^0-30^0 सेल्सियस तापमान में सूरजमुखी की अच्छी फसल ली जा सकती है। बीजों को बुआई से पहले 1 लीटर पानी में जिंक सल्फेट की 20 ग्राम मात्रा मिला कर बनाए गए घोल में 12 घंटे तक भिगो लें। फिर उस के बाद छाया में 8-9 प्रतिशत नमी बच जाने तक सुखाएं। इसके बाद बीजों को बॉवस्टिन या थीरम से उपचारित करें। कुछ देर छाया में सुखाने के बाद पीएसबी 200 ग्राम/कि.ग्रा. की दर से बीजों का उपचार करें। उसके बाद बीजों को 24 घंटे तक सुखाएं।
- उर्वरक का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना चाहिए। मृदा परीक्षण न होने की दशा में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40 कि.ग्रा. पोटाश एवं 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर की दर से बुआई के समय प्रयोग करना चाहिए। खरपतवारों की रोकथाम के लिए प्री इमरजेंस फ्लूक्लोरीन का 2 लीटर/हैक्टर की दर से बीज की बुआई से 4-5 दिनों बाद छिड़काव करें। दोबारा 30-35 दिनों के बाद हाथों से बचे हुए खरपतवारों को उखाड़ दें।
- खरीफ मौसम की फसल की बुआई का उचित समय जून का दूसरा पखवाड़ा है। असिंचित क्षेत्रों में जहां बुआई मानसून के बाद की जाती है, जुलाई के पहले पखवाड़े में बुआई के काम को पूरा कर लें। प्रजातियों और मौसम के अनुसार खेत में पौधों की संख्या में अंतर रखा जाता है। गुच्छेदार किस्मों में पंक्ति से पंक्ति और पौधे से पौधे की दूरी 30×10 सें.मी. रखें। फैलने वाली प्रजातियों में पंक्ति से पंक्ति और पौधे से पौधे की दूरी 45-60×10-15 सें.मी. रखें। खरीफ मौसम में यदि संभव हो, मूंगफली की बुआई मेड़ों पर करें।

कपास की फसल की बुआई एवं देखभाल

- सिंचाई की अच्छी व्यवस्था हो तो मई में भी इसकी बुआई की जा सकती है। बुआई के लिए सीड-कम-फर्टि ड्रिल अथवा प्लांटर का प्रयोग कर सकते हैं। कपास के लिए रेतीली लवणीय भूमि को छोड़कर सभी प्रकार की भूमि में बुआई की जा सकती है। बुआई से पूर्व बीज को प्रति कि.ग्रा. 2-5 ग्राम कार्बेन्डाजिम या कैप्टॉन दवा से उपचारित करें। इमिडाक्लोप्रिड 7 ग्राम अथवा कार्बोसल्फॉन 20 ग्राम प्रति कि.ग्रा. ग्राम बीज उपचारित कर बोने से फसल को 40 से 60 दिनों तक

कपास

रसचूसक कीड़ों से सुरक्षा मिलती है। दीमक से बचाव के लिए 10 मि.ली. पानी में 10 मिली क्लोरोपाइरीफॉस मिलाकर बीज पर छिड़क दें तथा 30-40 मिनट छाया में सुखाकर बुआई कर दें।

- कपास की **संकर प्रजातियां** जैसे-लक्ष्मी, एच.एस. 45, एच.एस. 6, एल.एच. 144, एच.एल. 1556, एफ. 1861, एफ. 1378, एफ. 1378, एफ. 846 एवं **देसी प्रजातियां** जैसे-एच. 777, एच.डी. 1, एच. 974, एच.डी. 107, डी.एस. 5, एल.डी. 694 एवं एल.डी. 327 उगाई जा सकती है। अमेरिकन, देशी और संकर कपास के लिए क्रमशः 15-20, 10-12 और 4-5 कि.ग्रा./हैक्टर बीज पर्याप्त होता है। देसी कपास अथवा अमेरिकन के लिए 60×30 सें.मी. तथा संकर किस्मों के लिए 90×40 सें.मी. कतार से कतार और पौधे से पौधे की दूरी रखनी चाहिए।
- उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण की संस्तुतियों के आधार पर किया जाना चाहिए। कपास की देसी किस्मों के लिए 50-70 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 20-30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, अमेरिकन एवं देसी किस्मों के लिए 60-80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 20-30 कि.ग्रा. पोटाश और संकर किस्मों के लिए 150-60-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश/हैक्टर की क्रमशः आवश्यकता होती है। 25 कि.ग्रा. जिंक/हैक्टर का प्रयोग लाभदायक है।
- कपास में बैक्टीरियल झुलसा रोग तथा फफूंदीजनित रोग लगते हैं। इनके बचाव के लिए वर्षा प्रारंभ होने पर जून में 1.25 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड, 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण एवं 50 ग्राम एग्रीमाईसीन प्रति हैक्टर की दर से 500-600 लीटर पानी में घोलकर दो छिड़काव 20 से 25 दिनों के अंतराल पर करने चाहिए। कपास में कीटों जैसे कि फुदका या जैसिड, सफेद मक्खी, माहूं, तेला, थ्रिप्स एवं गूलरभेदक से काफी नुकसान होता है। इनके नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफॉस 25 ई.सी. 1.25 लीटर, साथ ही सफेद मक्खी, गूलरभेदक कीट के लिए ट्रायकोफॉस 40 ई.सी., 1.50 लीटर के लिए रसायन 250 से 300 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर छिड़काव करना चाहिए।

गन्ने की फसल में देखभाल

- गन्ने की फसल में निराई-गुड़ाई, खरपतवार नियंत्रण एवं सिंचाई आवश्यकतानुसार करें। नाइट्रोजन की शेष बची हुई मात्रा 50 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से टॉपड्रेसिंग के रूप में देकर मिट्टी चढ़ा दें।
- खरपतवार नियंत्रण के लिए निराई करें। यदि देर से या अप्रैल में बुआई के समय एट्राजिन का उपयोग किया है तो इस महीने में खरपतवार नियंत्रण के लिए 2,4 डी 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व का 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। यह कीट मार्च से सितम्बर तक लगता है तथा गन्ने में लगने वाले सभी कीटों में प्रमुख है। इस कीट द्वारा सबसे अधिक नुकसान होता है। इसके नियंत्रण के लिए अंडे समूह को एकत्र करके नष्ट कर देना चाहिए। मार्च से जुलाई तक 15 दिनों के अंतराल पर ट्राइकोकार्ड का प्रत्यारोपण करना चाहिए। जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक कारटाफ हाइड्रोक्लोराइड 20-25 कि.ग्रा./हैक्टर या कार्बोफ्यूरान 3 जी. 25 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से पौधों की जड़ों के पास समुचित नमी की दशा में प्रयोग करना चाहिए।

चारे वाली फसलों (बाजरा व ज्वार) की देखभाल

- ज्वार की खेती के लिए दोमट तथा बलुई दोमट मृदा सबसे अच्छी होती है। जल निकास की उचित व्यवस्था होने पर काली तथा भारी मृदा में यह अच्छी उपज देती है। अत्यंत हल्की बलुई मृदाओं में इसकी बढ़वार अच्छी नहीं होती। इसकी खेती के लिए भूमि का पी-एच मान 6.7 से 7.5 तक अच्छा रहता है। चारे के लिए ज्वार, लोबिया, ग्वार एवं बहुकटाई वाली चरी की बुआई कर लें। वर्षा न होने की दशा में पलेवा करके बुआई करें। चारे वाली **ज्वार की एक कटाई के लिए उन्नत किस्में** यू.पी. चरी-1, यू.पी. चरी-2, पूसा चरी-6 व पूसा चरी-9, हरियाणा चरी-136, हरियाणा चरी-260, राजस्थान चरी-1 व राजस्थान चरी-2, **दो कटाई वाली किस्में** एम पी चरी व जवाहर चरी-69 तथा **बहु कटाई वाली किस्में** पूसा चरी 615, पूसा चरी हाइब्रिड 109, पूसा चरी-23, मीठी सूडान (एसएसजी 59-3), हरा सोना, प्रो एग्रो चरी, पूसा चरी हाइब्रिड 106 (एसएस जी-998), एम एफ एच-3 के लिए उपयुक्त हैं। छोटे बीज वाली प्रजातियां जैसे-सूडान चरी, एम पी चरी के लिए 30-40 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर पर्याप्त रहता है। बड़े दानों वाली प्रजातियां जैसे-पूसा चरी 1 व पूसा चरी 6, हरियाणा चरी-136 तथा कुछ संकर किस्मों के लिए 40-50 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर की आवश्यकता होती है।
- साधारणतया 70-80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 40 कि.ग्रा./हैक्टर पोटाश की आवश्यकता होती है। एकल कटाई वाली ज्वार के लिए नाइट्रोजन की आधी तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बोने के समय तथा शेष नाइट्रोजन लगभग 30 दिनों बाद देते हैं। बहु कटाई वाली ज्वार में लगभग 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रत्येक कटाई के बाद देनी चाहिए। जस्ते की कमी वाले क्षेत्रों में 10-20 कि.ग्रा./हैक्टर जिंक सल्फेट बोने के समय देनी चाहिए। ज्वार 40-45 कि.ग्रा., लोबिया 30-35 कि.ग्रा. एवं बहुकटाई वाली चरी 20.25 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर पर्याप्त होता है।

गन्ना

- अच्छे जल निकास वाली हल्की से भारी मृदाएं जिनका पी-एच मान 6.5 से 7.5 हो, बाजरा के लिए उपयुक्त होती हैं। अच्छे जमाव एवं पौध संख्या के लिए समतल तथा खरपतवार रहित, अच्छे से तैयार खेत होना चाहिए।

चारे वाली ज्वार

- खरीफ की बुआई के लिए जुलाई का प्रथम पखवाड़ा ही उत्तम समय होता है। इस फसल को जल्दी या देर से बोने पर भी चारे की अच्छी पैदावार हो जाती है।
- **चारे वाली बाजरा की उन्नत किस्में:** पूसा मोती, जीएफबी-1, फोडर कम्बू-8, माल बान्द्रो, जी-2, राज बाजरा चरी-2, यूपीएफबी-1, टाइप-55, एस-530, ए-1/30, एफबीसी-16, राजको, पीएचबी-12, एमएच-30, बीजे 105, आनन्द एस-11, के-674, के-6787, एल-74 आदि। बोने का सही तरीका सीडड्रिल होता है। इसमें बीज को 20-25 सें.मी. पर कतारों में बोते हैं। इस विधि से 8-10 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर पर्याप्त होता है। बाजरे का बीज छोटा होने के कारण इसकी बुआई 2-2.5 सें.मी. गहराई पर करनी चाहिए तथा बोने से पहले बीज को थीरम से 3.0 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।

औषधीय फसलों की देखभाल

- माह के अंत में मेंथा फसल की दूसरी कटाई कर लें। मेंथा के खेतों में जल निकास की व्यवस्था करें।

सब्जी वाली फसलों का उत्पादन एवं प्रबंधन

- लोबिया की खेती के लिए गर्म व आर्द्र जलवायु उपयुक्त है। तापमान 24^0-27^0 सेल्सियस के बीच ठीक रहता है। अधिक ठंडे मौसम में पौधों की बढ़वार रुक जाती है। सभी प्रकार की भूमि में इसकी खेती की जा सकती है। मिट्टी का पी-एच मान 5.5-6.5 उचित है। भूमि में जल निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए। वर्षा के मौसम के लिए इसकी बुआई जून अंत से जुलाई तक की जाती है। इसकी बुआई के लिए जून माह उपयुक्त समय है। लोबिया की प्रजातियां पूसा कोमल, पूसा सुकोमल, पूसा बरसाती, पूसा दो फसली, अर्का, गरिमा, काशी गौरी तथा काशी कंचन आदि हैं। एक हैक्टर क्षेत्र में बुआई करने के लिए 15-20 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है। लोबिया की बौनी प्रजातियों की बुआई 45×15 सें.मी. और फैलने वाली प्रजातियों की बुआई 75×25 सें.मी. की दूरी पर करनी चाहिए। इसकी अच्छी फसल लेने के लिए प्रति हैक्टर 15 टन सड़ी गोबर की खाद या 8 टन नाडेप कम्पोस्ट खाद के साथ बुआई के समय 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 50 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर प्रयोग करनी चाहिए।

लोबिया काशी कंचन

- फूलगोभी की अगेती फसल के लिए अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट मिट्टी अच्छी होती है। खेत की तैयारी भलीभांति जुताई करके एवं पाटा चलाकर कर लेनी चाहिए। 2.5×1.0 मीटर की सात क्यारियों में लगभग 200 ग्राम बीज बोया जा सकता है। क्यारियां 15 सें.मी. ऊंची बनानी चाहिए। क्यारियों की लगभग 8 सें.मी. ऊपरी सतह पर गोबर की सड़ी खाद पर्याप्त मात्रा में मिलानी आवश्यक है। खाद मिलाने के बाद क्यारी को समतल कर लेना चाहिए। बीज 2.5-5.0 सें.मी. की कतारों में बोना चाहिए। अगेती फूलगोभी की पौध तैयार करने के लिए पौधशाला की तैयारी कर बीज बोयें। बुआई से पहले 4 ग्राम ट्राइकोडर्मा या 2 ग्राम थीरम या कैप्टॉन कि.ग्रा. की दर से बीज को उपचारित करें। अगेती फसल के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 45 सें.मी. होनी चाहिए। अगेती फूलगोभी की प्रजातियां पूसा दीपाली, पूसा कार्तिक संकर, पूसा सिंथेटिक, पूसा मेघना, पूसा अर्ली, पंत गोभी-2, पंत गोभी-3, अर्ली पटना, अर्ली कुंवारी, सेल-327 व सेल-328 आदि हैं। फूलगोभी की अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए प्रति हैक्टर 300 क्विंटल गोबर की खाद रोपाई से पूर्व खेत में डालकर भलीभांति मिला देनी चाहिए। उर्वरक के रूप में 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 60 कि.ग्रा. पोटाश की आवश्यकता होती है। दोमट मिट्टी में अगेती किस्मों में 5-6 दिनों के अंतर से सिंचाई पौध रोपण के तुरंत बाद करना आवश्यक है।
- प्याज की एन 53, पूसा रेड, पूसा रतनार, एग्रीफाउंड लाइट रेड, एग्रीफाउंड रोज, पूसा व्हाइट राउंड, पूसा व्हाइट फ्लैट, भीमा डार्क रेड आदि प्रजातियां खरीफ मौसम के लिए उपयुक्त हैं। खरीफ प्याज के लिए 75 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40 कि.ग्रा. पोटाश और 20 कि.ग्रा. सल्फर/हैक्टर की दर से प्रयोग की जाती है। खरीफ में जल भराव से एंथ्रेक्नोज रोग प्याज में काफी हानि पहुंचाता है, इसलिए पानी का निकास अच्छा होना चाहिए।
- बैंगन को लंबे गर्म और बरसाती मौसम की आवश्यकता होती है। इसकी खेती के लिए समशीतोष्ण जलवायु की आवश्यकता होती है। इसकी खेती के लिए जल निकासी वाली सभी प्रकार की भूमि में अच्छी पैदावार मिलती है। इसके साथ-साथ यदि मिट्टी दोमट और हल्की दोमट हो, तो यह इस फसल के लिए सबसे उपयुक्त होती है। बैंगन के लिए 5-7 सें.मी. की दूरी पर कतार बनाकर पौधशाला में बीज बोने चाहिए। एक हैक्टर के लिए 400-450 ग्राम बीज सामान्य प्रजाति का उपयुक्त है। संकर प्रजातियों के लिए 250-275 ग्राम/हैक्टर बीज

उपयुक्त होते हैं। अगेती बैंगन की पौध तैयार करने के लिए पौधशाला की तैयारी कर बीज बोयें। बुआई से पहले 4 ग्राम ट्राइकोडर्मा या 2 ग्राम थीरम या कैप्टॉन प्रति कि.ग्रा. की दर से बीज को उपचारित करें। अगेती बैंगन की प्रजातियां पूसा श्यामला, पूसा पर्पल क्लस्टर, पूसा उत्तम, पूसा बिंदु, पूसा अंकुर, पूसा हाइब्रिड-5, पूसा हाइब्रिड-6, पूसा हाइब्रिड-9, पूसा क्रांति, पंत सम्राट, पंत ऋतुराज, पंजाब सदाबहार, पंजाब बरसाती आदि के लिए उपयुक्त है। इस फसल में 2-3 निराई-गुड़ाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए। खरपतवार के लिए टॉप खरपतवारनाशी का भी उपयोग कर सकते हैं। इसके लिए एलाक्लोर 50 ई.सी. 3.5 लीटर या वासालिन 48 ई.सी. 2 लीटर/हैक्टर 800 से 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर रोपाई से पहले छिड़काव करना चाहिए।

- इस मौसम में बेल वाली फसलों में न्यूनतम नमी बनाएं रखें अन्यथा मृदा में कम नमी होने से पुष्पन एवं परागण पर असर हो सकता है। इससे फसल उत्पादन में कमी आ सकती है। तापमान अधिक रहने की संभावना को देखते हुए, किसान तैयार सब्जियों की तुड़ाई सुबह या शाम को करें। इसके बाद इसे छायादार स्थान में रखें।
- अदरक एवं हल्दी की फसल में आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा 50 कि.ग्रा. यूरिया प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।
- रामदाना की बुआई 15 जून तक करें। इसके लिए 1.5 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

अगेती फूलगोभी

भिंडी

भिंडी को लगभग सभी तरह की मृदा में उगाया जा सकता है। अधिक उत्पादन के लिए जल निकास एवं जीवाष्मयुक्त 6-6.8 पी-एच वाली दोमट भूमि सर्वोत्तम रहती है। इस फसल की यदि अप्रैल-मई में बुआई हुई है तो भिंडी की तुड़ाई जून में होती है। तापमान अधिक होने के कारण सिंचाई प्रबंधन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। भिंडी की प्रजाति पूसा ग्रीन भिंडी-5, पूसा ए-4, पूसा सावनी, पूसा मखमली,

वर्षा उपहार, परभणी क्रांति, आजाद भिंडी, अर्का अनामिका, वीआरो-5 व वीआरो-6 आदि प्रमुख हैं। एक हैक्टर क्षेत्र के लिए भिंडी का 8-10 कि.ग्रा. बीज 45×30 सें.मी. की दूरी पर बुआई करने के लिए पर्याप्त होता है। खेत की तैयारी के समय 25-30 टन सड़ी गोबर की खाद या 10 टन नाडेप कम्पोस्ट खाद प्रति हैक्टर की दर से खेत में मिलायें। भिंडी की फसल में बुआई के समय 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 50 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर की दर से प्रयोग करें। तुड़ाई के बाद यूरिया 5-10 कि.ग्रा. प्रति एकड़ की दर से डालें तथा उसके उपरांत सिंचाई करें। इसके साथ ही तापमान को ध्यान में रखते हुए माइट, जैसिड और हॉपर की निरंतर निगरानी करते रहें। इस मौसम में भिंडी की फसल में हल्की सिंचाई कम अंतराल पर करें। खरपतवार के लिए बुआई के 30-60 दिनों के दौरान कुल 2-3 निराई-गुड़ाई प्रयाप्त होती हैं। जहां पर खरपतवारों की अधिक समस्या हो, वहां खरपतवारनाशी फ्लूक्लोरालिन 1.5-2.0 लीटर को 500-600 लीटर पानी में घोलकर/हैक्टर क्षेत्र में बुआई से पूर्व छिड़काव करें।

बागवानी फसलों का उत्पादन एवं प्रबंधन

- अमरूद के अच्छे उत्पादन के लिए उपजाऊ बलुई दोमट भूमि अच्छी पाई गई है। इसके उत्पादन के लिए 6-7.5 पी-एच मान की मृदा उपयुक्त होती है, किन्तु 7.5 से अधिक पी-एच मान की मृदा में उकठा रोग के प्रकोप की आशंका होती है। अमरूद को उष्ण तथा उपोष्ण जलवायु में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। अमरूद की खेती के लिए 15-30^0 सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है। यह सूखे को भलीभांति सहन कर लेता है। तापमान के अधिक उतार-चढ़ाव, गर्म हवा, कम वर्षा, जलाक्रान्ति का फलोत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव कम पड़ता है। अमरूद की उगाई जाने वाली उन्नत किस्में जैसे-इलाहाबाद सफेदा, लखनऊ-49, चित्तीदार, ग्वालियर-27, एपिल-गुआवा एवं धारीदार प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त अर्का-मृदुला, श्वेता, ललित एवं पंत-प्रभात किस्में व्यावसायिक उत्पादन के लिए उपयोग में लाई जा सकती हैं। कोहीर, सफेदा एवं सफेद जाम नामक संकर प्रजातियां भी उपयोग में लाई जा सकती हैं। अमरूद के नये बागों के रोपण के लिए रेखांकन करने के उपरान्त गड्ढों की खुदाई करें। इसके लिए 5×5 मीटर की दूरी पर 75 सें.मी. लंबे, चौड़े व गहरे गड्ढे बनायें। प्रत्येक गड्ढे में 30-40 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 1 कि.ग्रा. नीम की फली डालें। ऊपर की मिट्टी में मिलाकर गड्ढे को जमीन से 20 सें.मी. की ऊंचाई तक भर दें। प्रारंभिक दो-तीन वर्षों में बगीचों के रिक्त स्थानों में खरीफ में लोबिया, ज्वार, उड़द, मूंग एवं सोयाबीन फसलें उगायें।

अगेती हरी मिर्च

- आंवला एक अत्यधिक उत्पादनशील प्रचुर पोषक तत्वों वाला तथा अद्वितीय औषधीय गुणों वाला पौधा है। आंवला का फल विटामिन-सी का प्रमुख स्रोत है। इसमें शर्करा एवं अन्य पोषक तत्व भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। आंवला उष्ण जलवायु का वृक्ष है। इसकी खासियत यह भी है कि इसे शुष्क प्रदेश में आसानी से उगाया जा सकता है। बलुई भूमि के अतिरिक्त सभी प्रकार की भूमि में आंवले की खेती की जा सकती है। इसका पौधा काफी कठोर होता है। सामान्य भूमि जिसका पी-एच मान 9 तक हो, उसमें भी आंवले की खेती की जा सकती है। ऊसर भूमि में जून में 8-10 मीटर की दूरी पर 1.0-1.25 मीटर के गड्ढे खोद लेने चाहिए। बरसात के मौसम में इन गड्ढों में पानी भर देना चाहिए। एकत्रित पानी को निकालकर फेंक देना चाहिए। प्रत्येक गड्ढे में 50-60 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद, 15-20 कि.ग्रा. बालू, 8-10 कि.ग्रा. जिप्सम और ऑर्गेनिक खाद का मिश्रण लगभग 5 कि.ग्रा. भर देना चाहिए। भराई के 15-25 दिनों बाद ही पौधे का रोपण करना चाहिए। सामान्य भूमि में प्रत्येक गड्ढे में 40-50 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद और 2 कि.ग्रा. नीम की सड़ी खाद का मिश्रण और ऊपर वाली मिट्टी मिलाकर भर देनी चाहिए। गड्ढे जमीन की सतह से 15-20 सें.मी. उंचाई तक भर दें।
- पपीते की अच्छी खेती गर्म, नमीयुक्त जलवायु में की जा सकती है। इसे अधिकतम 38^0-44^0 सेल्सियस तक तापमान होने पर उगाया जा सकता है। जमीन उपजाऊ हो और जल निकास अच्छा हो, तो पपीते की खेती उत्तम होती है। पपीते के नये बागों के रोपण के लिए रेखांकन करने के उपरांत गड्ढों की खुदाई करें। पपीते के लिए 1-5 मीटर की दूरी पर 75 सें.मी. लंबे, चौड़े व गहरे गड्ढे बनायें। प्रत्येक गड्ढे में 30-40 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 1 कि.ग्रा. नीम की फली, गड्ढे से निकाली गई ऊपर की मिट्टी में मिलाकर गड्ढे को जमीन से 20 सें.मी. की ऊंचाई तक भर दें। एक हैक्टर के लिए 500 ग्राम से एक कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। पपीते के पौधे बीज द्वारा तैयार किए जाते हैं। एक हैक्टर खेती में प्रति गड्ढा 2 पौधे लगाने पर 5,000 पौध संख्या लगेगी। पपीते की उगाई जाने वाली उन्नत किस्में जैसे-पूसा मेजस्टी, पूसा जाइंट, वाशिंगटन, सोलो, कोयम्बटूर, हनीड्यू, कुर्ग हनीड्यू, पूसा ड्वार्फ, पूसा डेलीशियस, सिलोन, पूसा नन्हा आदि प्रमुख हैं। 20 सें.मी. चौड़े मुंह वाली, 25 सें.मी. लंबी तथा 150 सें.मी. छेद वाली पॉलीथीन थैलियां लें एवं इन थैलियों में गोबर की खाद, मिट्टी एवं रेत का समिश्रण भरें। थैली का ऊपरी 1 सें.मी. भाग नहीं भरना चाहिए, प्रति थैली 2 से 3 बीज होने चाहिए। मिट्टी में हमेशा पर्याप्त नमी रखनी चाहिए, जब पौधे 15-20 सें.मी. ऊंचे हो जायें तब थैलियों के नीचे

प्याज

प्याज की फसल के लिए ऐसी जलवायु की आवश्यकता होती है, जो न बहुत गर्म हो और न ही बहुत ठंडी। अच्छे कंद बनने के लिए बड़े दिनों तथा कुछ

अधिक तापमान होना अच्छा रहता है। आमतौर पर सभी प्रकार की भूमि में इसकी खेती की जाती है। उपजाऊ दोमट मिट्टी, जिसमें जीवांश खाद प्रचुर मात्रा में हो व जल निकास की उत्तम व्यवस्था हो, सर्वोत्तम रहती है। प्याज की बुआई खरीफ मौसम में यदि बीज द्वारा पौधा बनाकर फसल लेनी हो तो, जून के मध्य तक करते हैं। यदि छोटे कंदों द्वारा खरीफ में अगेती या हरी प्याज लेनी हो तो कंदों को अगस्त में बोयें। एक हैक्टर में फसल लगाने के लिए 8-10 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है। पौधे एवं कंद तैयार करने के लिए बीज को क्यारियों में बोयें, जो 3×1 मीटर आकार की हों। वर्षाकाल में उचित जल निकास के लिए क्यारियों की ऊंचाई 10-15 सें.मी. रखनी चाहिए। नर्सरी में अच्छी तरह खरपतवार निकालने तथा दवा डालने के लिए बीजों को 5-7 सें.मी. की दूरी पर कतारों में 2-3 सें.मी. गहराई पर बोना अच्छा रहता है। क्यारियों की मिट्टी बुआई से पहले अच्छी तरह भुरभुरी कर लेनी चाहिए। पौधों को आर्द्र गलन रोग से बचाने के लिए बीज को ट्राइकोडर्मा विरिडी (4 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) या थीरम (2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) से उपचारित करके बोना चाहिए। बोने के बाद बीजों को बारीक खाद एवं भुरभुरी मिट्टी व घास से ढक दें।

कद्दूवर्गीय सब्जियां

कद्दूवर्गीय सब्जियों जैसे-लौकी, तोरई, करेला, टिंडा, कद्दू, खीरा, ककड़ी, तरबूज, खरबूज, तथा पेठा की बुआई का यह उपयुक्त

समय है। लौकी की पूसा समर प्रोलिफिक लौंग, पूसा नवीन; तोरई की पूसा चिकनी, पूसा नसदार, पंजाब सदाबहार, सतपुतिया; करेला की पूसा दो मौसमी, पूसा विशेष, कोयम्बटूर कोयम्बटूर लौंग, कल्याणपुर बारहमासी; टिंडा की कल्याणपुर, लुधियाना सलेक्शन, हिसार सलेक्शन-1। पंजाब टिंडा कद्दू की प्रजाति पूसा विश्वास, पूसा विकास, पूसा हाइब्रिड 1; खीरा की पूसा उदय, पूसा बरखा, प्वाइन सेट, कल्याणपुर, जापानीज लौंग ग्रीन तथा पेठा की पूसा उज्ज्वल, पूसा उर्मि (डी.ए.जी. एच.-16), पूसा श्रेयाली (डी.ए.जी.एच.-14) प्रमुख प्रजातियां हैं। लौकी एवं तोरई का 4-5 कि.ग्रा., टिंडा का 5-6 कि.ग्रा., काशीफल एवं खीरा का 3-4 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। कद्दूवर्गीय सब्जियों की उन्नत प्रजातियों के लिए 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 25 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 25 कि.ग्रा. पोटाश तथा कद्दूवर्गीय संकर प्रजातियों के लिए 100 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 50 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए।

आम

आम के पौधे की देखरेख उसके समुचित फलन एवं पूर्ण उत्पादन के लिए आवश्यक है। पौधों को लगाने के बाद इनके पूर्ण रूप से स्थापित होने तक सिंचाई करें। प्रारंभिक दो-तीन वर्षों तक लू से बचाने के लिए सिंचाई करें। जमीन से 80 सें.मी. की ऊंचाई तक की शाखाओं को

निकाल दें, जिससे मुख्य तने का समुचित विकास हो सके। आम में ग्राफ्टिंग का कार्य इस माह शुरू करें। ग्राफ्टिंग के स्थान के नीचे से कोई शाखा नहीं निकलनी चाहिए। ऊपर की 3-4 शाखाओं को बढ़ने दें। बड़े छत्रक वाले घने वृक्षों में न फलने वाली बीच की शाखाओं को काट दें। फलों को तोड़ने के बाद मंजर के साथ-साथ 2-3 सें.मी. टहनियों को काट दें ताकि स्वस्थ शाखायें निकलें। इससे अगले मौसम में अच्छा फलन होगा। आम की मक्खी के नियंत्रण के लिए मिथाईलयूजीनाल ट्रैप का प्रयोग करें। प्लाई/लकड़ी के टुकड़े को अल्कोहल, मिथाइल, मैलाथियान (6:4:1) के घोल में 48 घंटे डुबोने के पश्चात पेड़ पर लटका दें तथा ट्रैप को दो माह बाद बदल दें। इसके साथ ही मिलीबग की रोकथाम के लिए 2 प्रतिशत मिथाइल पैराथीयान का उपयोग करना चाहिए।

से धारदार ब्लेड द्वारा सावधानीपूर्वक काटकर पहले तैयार किए गए गड्ढों में लगाना चाहिए।

- आम के पौधों को 10×10 मीटर की दूरी पर लगायें। किंतु सघन बागवानी में इसे 2.5 से 4 मीटर की दूरी पर लगायें। पौधा लगाने के पूर्व खेत में रेखांकन कर पौधों का स्थान सुनिश्चित कर लें। पौधे लगाने के लिए 1×1×1 मीटर आकार का गड्ढा खोदें। वर्षा प्रारंभ होने के पूर्व, जून में 20-30 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 2 कि.ग्रा. नीम की खली, 1 कि.ग्रा. हड्डी का चूरा अथवा सिंगल सुपर फॉस्फेट एवं 100 ग्राम मिथाईल पैरामिथियॉन की डस्ट (10 प्रतिशत) या 20 ग्राम थीमेट 10-जी को खेत की ऊपरी सतह की मिट्टी के साथ मिला कर गड्ढों को अच्छी तरह भर दें। दो-तीन बार बारिश होने के बाद जब मिट्टी दब जाये तब पूर्व चिन्हित स्थान पर खुरपी की सहायता से पौधे की पिंडी के आकार की जगह बनाकर पौधा लगायें। पौधा लगाने के बाद आसपास की मिट्टी को अच्छी तरह दबाकर एक थाला बना दें एवं हल्की सिंचाई करें।
- नीबू के एक वर्ष के पौधे में 25 ग्राम नाइट्रोजन व 25 ग्राम पोटाश की मात्रा को प्रतिवर्ष इस अनुपात में बढ़ाते रहें। क्रमशः 10 वर्ष या उससे अधिक आयु के पौधों के लिए 250 ग्राम नाइट्रोजन व पोटाश का प्रयोग इस माह या फल लगने के दो माह बाद करें।
- केले की रोपाई का यह उपयुक्त समय है। रोपण के लिए 3 माह पुरानी तलवारनुमा स्वस्थ व रोगमुक्त पत्ती यानी पौध का रोपण करें। रोपण से पूर्व सभी पत्तियों को 1.0 ग्राम बावस्टिन प्रति लीटर पानी में घोलकर उपचारित कर लें। रोपाई के तुरंत बाद सिंचाई कर दें।
- लीची एक महत्वपूर्ण स्वादिष्ट फल है। इसमें गूटी (लेयरिंग) द्वारा प्रवर्धन किया जाता है। गूटी द्वारा प्रवर्धन का सर्वोत्तम समय जून के दूसरे पखवाड़े से प्रारंभ करें। इस माह में बांधी गयी गूटी से सर्वाधिक सफलता मिलती है।
- बेर के एक वर्ष के पौधे में 5 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 50 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फॉस्फोरस व 25 ग्राम पोटाश का प्रयोग करें तथा यह मात्रा इसी अनुपात में आठ वर्ष तक बढ़ाते रहें। इसके बाद उससे अधिक आयु के पौधों के लिए 40 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 400 ग्राम नाइट्रोजन, 400 ग्राम फॉस्फोरस व 2500 ग्राम पोटाश प्रति पौधे की दर से प्रयोग करें। बेर में कटाई एवं छंटाई का कार्य समय से सम्पन्न करें।
- अंगूर को जल्दी तैयार करने व मिठास बढ़ाने के लिए 50 मि.मी. इथिफान एवं 100 ग्राम बोरेक्स को 100 लीटर पानी में घोल बनाकर पकने के 15 दिनों पहले पौधों पर छिड़काव करें तथा इसके बाद सिंचाई न करें। ■

पुष्प व सुगंध वाले पौधों का प्रबंधन

- फूलों में गुलदाउदी की कटिंग तैयार करें। गेंदा, देसी गुलाब, ग्लेडियोलस

गुलदाउदी

देसी गुलाब

तथा रजनीगंधा में निराई-गुड़ाई तथा आवश्यकतानुसार सिंचाई का ध्यान रखें। फूलों की संख्या एवं गुणवत्ता बढ़ाने के लिए जिब्रेलिक एसिड (जी.ए.3) 50 मि.ग्रा. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

- लिली तथा बेला में आवश्यकतानुसार

लिली

सिंचाई तथा निराई-गुड़ाई का ध्यान रखें।

(आवरण पृष्ठ II का शेष...)

परिवर्तन की परस्पर चुनौतियों का सामना करने के लिये बनाई गई है। जलवायु स्मार्ट कृषि में अनुकूलन, शमन और अन्य प्रथाओं का समावेश है। यह जलवायु परिवर्तन की समस्या का प्रतिरोध और पुनः जल्द अनुकूलन प्राप्त करके विभिन्न जलवायु संबंधी कठिनाइयों का प्रत्युत्तर देने के लिये प्रबंधकीय क्षमता को बढ़ाती है।

यह देखने को मिला है कि यदि किसान जलवायु स्मार्ट कृषि प्रौद्योगिकियों को अपनाता है तो उसके जोखिम स्तर में कमी के साथ आय में भी वृद्धि होती है।

वाटरशेड मैनेजमेंट से वर्षा जल संरक्षण

खेतों में जल प्रबंधन

तापमान वृद्धि के साथ फसलों में सिंचाई की अधिक आवश्यकता पड़ती है। ऐसे में जमीन में नमी का संरक्षण व वर्षा जल को एकत्रित करके सिंचाई हेतु प्रयोग में लाना एक उपयोगी कदम हो सकता है। जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम में हो रहे बदलाव और कम होती वर्षा को देखते हुए विश्व के कई देशों में वाटरशेड प्रबंधन के माध्यम से वर्षा के पानी को संचित कर सिंचाई के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। इससे जहां एक ओर सिंचाई जल के लिए लागत में कमी आ रही है, वहीं दूसरी ओर भूजल पुनर्भरण में भी मदद मिल रही है।

देश में वर्षाऋतु में जल संरक्षण की पर्याप्त व्यवस्था के अभाव के कारण वर्षा का शुद्ध और मीठा जल बड़े पैमाने पर नदियों के माध्यम से समुद्र के खारे पानी में मिल जाता है। वर्षाजल को जगह-जगह रोककर मृदा संरक्षण के साथ-साथ जल संकट की चुनौती का सफलतापूर्वक सामना किया जा सकता है। इससे घटते भूजल की समस्या का समाधान भी हो सकता है। केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों के सहयोग से स्थानीय स्तर पर जल संरक्षण के लिये कई योजनाएं संचालित कर रही है।

समग्र कृषि

कृषि संकट से बचने के लिए विश्व के अलग-अलग हिस्सों में किसान एकल कृषि की बजाय समग्र कृषि पर जोर दे रहे हैं। एकल कृषि में जहां जोखिम अधिक होता है, वहीं समग्र कृषि में जोखिम कम होता है। इस प्रणाली में अनेक फसलों का उत्पादन किया जाता है। इससे यदि एक फसल किसी कारणवश नष्ट हो जाए तो दूसरी फसल से किसान की रोजी-रोटी चल सकती है।

इस कृषि प्रणाली से किसानों, खासतौर पर छोटे काश्तकारों को अपने घर और बाजार के लिये कई तरह के उत्पादों के उत्पादन का पर्याप्त अवसर प्राप्त होता है। कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसर बढ़ाने, परिवार के लिये सन्तुलित पौष्टिक आहार जुटाने, पूरे साल आमदनी व रोजगार का इन्तजाम करने तथा मौसम और बाजार संबंधी जोखिम कम करने में भी इससे मदद मिलती है। इससे खेती में काम आने वाले आदानों के लिये किसानों की बाजार पर निर्भरता भी कम होती है।

समग्र कृषि प्रणाली अपनाने से खेती के जोखिमों को कम करने, खासतौर पर बाजार में मंदी और प्राकृतिक आपदाओं से उत्पन्न खतरों से बचाव में भी मदद मिलती है। एक ही बार में कई घटकों के होने से एक या दो फसलों के खराब हो जाने के बावजूद परिवार की आर्थिक स्थिति पर कोई खास असर नहीं पड़ता। इसके अलावा, इससे मौसम संबंधी जोखिमों से भी बचाव होता है।

पुनर्योजी कृषि

जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से कृषि को बचाने के लिए आजकल पुनर्योजी कृषि रिजनरेटिव एग्रीकल्चर को भी अपनाया जा रहा है। यह कृषि की एक ऐसी प्रणाली है, जो जैव विविधता को बढ़ाती है, मृदा को समृद्ध करती है, वाटरशेड में सुधार करती है और पारिस्थितिकी तंत्र को मजबूत बनाती है।

पुनर्योजी कृषि का उद्देश्य मृदा और ऊपर के बायोमास में उपस्थिति कार्बन का समुचित उपयोग करना है। यह विधि जलवायु अस्थिरता को कम करने के साथ ही खेती और पशुपालक समुदायों के लिए जीवनशक्ति प्रदान करती है। यह कृषि प्रणाली विज्ञान पर आधारित दशकों पुरानी है और दुनियाभर के किसान इसको अपना रहे हैं। इस प्रणाली में खेती के प्राकृतिक संसाधनों का न्यायसंगत इस्तेमाल करने पर जोर होता है। इस खेती में ऐसे पर्यावरण मित्र तरीकों को अहमियत दिया जाता है, जिनसे मृदा की उत्पादकता को बरकरार रखा जा सकता है और उर्वरा क्षमता का संरक्षण किया जा सकता है। ■

किसानों की आय बढ़ाने में सहायक समग्र कृषि प्रणाली

प्रस्तुतिः आश्विनी कुमार निगम

(स्रोतः वन एवं पर्यावरण मंत्रालय, भारत सरकार की वेबसाइट, पीआईबी की वेबसाइट, इंडिया वाटर पोर्टल की वेबसाइट)

पंजीकरण संख्या 14252/57 पंजीयक, समाचार पत्र, भारत सरकार
दिल्ली पोस्टल पंजीकृत संख्या DL(C)-12/1145/10-12
ISSN 0023-1088
मूल्य: ₹30

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के प्रकाशन

भाकृअनुप
ICAR

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें:
व्यवसाय प्रबंधक
कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-I, पूसा, नई दिल्ली 110 012
टेलिफैक्स: 91-11-25843657; ई-मेल: bmicar@icar.org.in
वेबसाइट: www.icar.org.in

डा. सतेन्द्र कुमार सिंह, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली 110 092 से मुद्रित। सम्पादक: अशोक सिंह